प्रकाशक :
मंत्री, अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ,
राजघाट, काशी



पहली बार : ३,०००
नवम्बर, १९६०
मूल्य : एक रुपया



मुद्रक :
ओम्प्रकाश कपूर,
ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी (बनारस) ५७३९–१७

प्र का श की य

प्रस्तुत 'नव-प्रभात' नाटक में सर्वोदय की व्यावहारिक अन्तिम मंजिल—समर्थों के परस्परावलम्बन के साथ स्वयंपूर्ण, सर्वपूर्ण ग्रामराज्य के सत्य-शिव-सुन्दर प्रभाव का चित्रण किया गया है। 'सर्वोदयपुरी' नामक ग्रामराज्य के प्रभाव से किस प्रकार उससे घोर विरोध रखनेवाले प्राचीनतावादी, पूँजीवादी, स्थितिस्थापकतावादी या उग्र क्रान्तिवादी भी अन्ततः अपनी हार मान विनम्र हो इस दिशा में मुड़ते हैं—इसका जीता-जागता चित्र प्रस्तुत नाटक में देखने को मिलेगा। साथ ही सर्वोदयपुरी या आदर्श ग्रामराज्य के नागरिक को अपना जीवन कितना शुद्ध-सात्त्विक, करुणापूरित और उच्चलक्ष्यनिष्ठ रखना पड़ता है—इसका भी उज्वल पाठ इसमें पढ़ने को मिलता है।

परिमार्जित साहित्यिक भाषा में लिखा गया यह नाटक हमारे पाठकों को रुचिकर होगा, ऐसी हम आशा करते हैं।

०

पात्र-परिचय

पुरुष

देवेन्द्रनाथ : नगर-श्रेष्ठ

मधुसूदन : नगर-प्रधान—प्रधान नायक

बलवीर सिंह : दस्युदल का प्रधान

सुरेन्द्र सिंह : दस्युदल का प्रधान सहायक

वीरेश सिंह, महेश सिंह, दलपत सिंह : बलवीर सिंह के अनुचर

महेशचन्द्र : सिरोही के लब्धप्रतिष्ठ नागरिक

महेन्द्र, नरेन्द्र : सिरोही के नागरिक

जगत सिंह : सिरोही के जमींदार, मिल-मालिक

सोहन सिंह, रतन सिंह, हरीचंद, जितेन्द्र : सिरोही के श्रमिक

कालूमल : चम्पा नगरी के एक प्रसिद्ध सेठ

स्वामी महामूर्खानंद, : एक विचारक

संत करोड़ीमल : एक प्रसिद्ध नागरिक

सेण्ट जेराल्ड : प्रधान प्रबधक

वजीर खाँ, मनोहर : प्रबंधक

विराज : मधुसूदन का मित्र

चन्द्रधर, गणेश : बाँध-रक्षक

हरिदयाल : एक उत्साही सर्वोदयी कार्यकर्ता

बिहारी, सुखई, मुलुवा : गाँव के किसान

स्त्री

प्रियंवदा : एक सर्वोदयी विदुषी नारी—प्रधान नायिका

ललितांगी : प्रियवदा की सखी

कोकिला, नीलम, कादंविनी, अचला : सहेलियाँ

सेठानी : सेठ कालूमल की पत्नी

रूपमती : सेठ कालूमल की पुत्री

डॉक्टर, बालक, बालिका, दस्युदल, ग्रामीण नारियाँ आदि।

प्रथम अंक

प्रथम दृश्य

[स्थान : विन्ध्यतनया के तट पर झूमता हुआ उपवन। काद-म्बिनी, नीलम, अचला, ललितांगी, कोकिला, प्रियंवदा आदि सहेलियाँ प्राभातिक समीर का सेवन कर रही हैं।]

प्रियंवदा : बहन कोकिला ! आज अरुणोदय की कितनी अनुपम छटा है ! मार्तण्ड अपने उद्वेलित प्रेम की अरुण किरणों से अक्षय सुहागिन धरा की माँग में सेंदुर भर रहा है। वह देखो, उसके प्रेम की अरुणिमा में कितनी कान्ति और सजीवता है ! दिव्य आत्माओं के मिलन की इस वेला में कितना उल्लास, कितना उन्माद और कितना स्फुरण भरा है। मतवाला समीर अनन्द से विभोर हो, इठला-इठलाकर झूम रहा है। उन्मत्त खगवृन्द के पखों में स्फुरण की तीव्रता गतिमान् है। कलरव का मादक संगीत भौतिकता की कुहू पर निर्मल आत्मा के शाश्वत प्रकाश की अनुभूति करा रहा है। विन्ध्यतनया की हृत्तन्त्री पर छिड़ी मनोहर रागिनी आत्मा को दुःख-दैन्य के पंक से उठा अमरता का सन्देश दे रही है। प्रकृति की गोद मे उल्लास और आनन्द का सागर लहरा रहा है। बहन, बता सकती हो कि फिर भी क्योंकर मानव ही दुख-दैन्य के भार से पीड़ित हो सिसक रहा है ?

कोकिला : लगता है, प्रकृति ने पक्षपात कर उल्लास और आनन्द अपने लिए रख लिया है और दुख-दैन्य मानव को दे स्वयं किलोलें कर रही है। लेकिन प्रियंवदा, क्या जानती हो कि प्रकृति के इस उल्लास और आनन्द का श्रेय मानव को भी कम नहीं मिला है।

प्रियंवदा : सो कैसे ?

कोकिला : तुम जानती ही हो कि सुख और दुःख एक-दूसरे के पूरक है। बिना दुःख के सुख की कल्पना नहीं की जा सकती। तर्कशास्त्र का सर्वमान्य नियम है कि 'सत्' मे सदा 'असत्' की कल्पना अन्तर्निहित होती है। अतः सुख और दुःख सदा साथ ही रहते हैं। यदि सुख प्रकृति ने अपने लिए रख छोड़ा है, तो दुःख बँटानेवाला भी कोई होना चाहिए। और वह है मानव, जिसने प्रकृति के दुःख-दैन्य को स्वतः धारण कर प्रकृति के लिए अपरिमित आनन्द और उल्लास छोड़ उसे सदा के लिए अपने हृदय की विशालता के नीचे दबा दिया है।

नीलम : मैं तुम्हारे मत से असहमत हूँ। दुख-दैन्य प्रकृति की देन नहीं, मानव द्वारा निर्मित वस्तु है। आज का मानव विनाश की अतुलित सामग्री का निर्माण कर स्वयं विनाश को गले लगाने के लिए आतुर है। दूसरी ओर उसकी असमता पर आधृत सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्थाएँ उसका जीवन दूभर बना रही हैं। क्या अदृश्य ने हमें असमताओं के काँटों पर चलने के लिए बनाकर भेजा था ?

कोकिला : तुम्हारे कथन मे अर्ध-सत्यता है। वास्तव मे मनुष्य स्वय विनाश के पथ पर बढ़ रहा है और असमता के दानव ने मानवता को जितनी अधिक यातना दी है, उतनी यातना अदृश्य के विधान मे कभी किसीके लिए नहीं है। अन्य पशु-पक्षी सदा एक ही बार मृत्यु की यातना भोगते हैं, किन्तु निरीह मानव असमता द्वारा निर्मित मृत्यु की दारुण यातना जीवन-भर सहते है—मर-मर-कर जीते हैं। यह सत्य के अधिक निकट है कि इस वस्तुस्थिति का उत्तरदायी मानव ही है, क्योकि अदृश्य ने उसे स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति प्रदान कर अन्य पशुओं से ऊपर उठा दिया है। पशु अपनी मूल-वृत्तियों द्वारा शासित हैं, जब कि मनुष्य अपनी स्वतन्त्र विचार-शक्ति द्वारा। केवल यही अन्तर है, मनुष्य और पशु में। जहाँ पशु अपनी

मूल-वृत्तियो का दास है, वहीं मनुष्य को अदृश्य ने स्वतन्त्र विचार-शक्ति प्रदान कर मूल-वृत्तियों का स्वामी बना दिया है। मानव अपनी व्यवस्था करने को स्वतन्त्र है। फिर भी वह अपनी मूल-वृत्तियो के प्रभाव से पूर्णतः मुक्त नहीं है। उसके जीवन-व्यापार मे क्रोध, द्वेष, अहंकार, काम आदि मूल-वृत्तियों का प्रभाव पूर्ण दृष्टि-गोचर होता है। ये मूल-वृत्तियाँ अदृश्य की देन हैं और सभ्य कहलानेवाला मनुष्य आज भी इन पाशविक वृत्तियों का क्रीत-दास है। उसका 'सभ्य' कहलाने का दावा झूठा है। वह एक छल है। मनुष्य आज भी बर्बर मूल-वृत्तियों से पूर्ण प्रभावित है, इसलिए वह सभ्य हो ही नहीं सकता।

सभ्य होने का अर्थ है, मूल-वृत्तियों पर पूर्ण विजय और वही है, आत्मा का सच्चा विकास। आत्मा की स्निग्धता और पवित्रता के शीतल प्रकाश से मूल-वृत्तियों का परिशोधन कर उनके उचित मार्गान्तरीकरण द्वारा ही जीवन मे शाश्वत आनन्द का आविर्भाव सम्भव है। अतः बहन नीलम, यह सच है कि मनुष्य ने स्वतन्त्र विचार-शक्ति पायी है, फिर भी उसके जीवन मे उन मूल-वृत्तियो का पूर्ण प्रभाव रहता है, जो अदृश्य की देन है।

कादम्बिनी : (बैठे हुए पक्षियों के जोडे की ओर देखते हुए) कोकिला ! मैं तुमसे असन्तुष्ट हूँ।

ललितांगी : मै भी।

कोकिला : क्या मै तुम लोगो के असन्तोष का कारण जान सकती हूँ ?

कादम्बिनी : क्या अब भी नहीं समझी ? (बैठे हुए पक्षियों की ओर देखते हुए) देखो, वे चोंच से एक-दूसरे के पंख खुजला रहे हैं।

कोकिला : तुम तो पहेली बुझा रही हो। अदृश्य ने मुझे अन्तर्यामी नहीं बनाया है। कुछ बताओगी भी या नहीं ?

ललितांगी : बहन कोकिला, तुम्हारा आधा जीवन नष्ट हो चुका है।

वह कला-शून्य है। वहाँ केवल दार्शनिक जड़ता है। नारी-सुलभ भावनाओं से तुम वंचित हो चुकी हो। इसका मुझे बहुत रंज है।

सभी : और हमें भी। (सभी हँसती हैं)

कोकिला : (हँसती हुई) फिर भी मैं प्रसन्न हूँ।

अचला : तुम फिर भी प्रसन्न हो ?

कोकिला : क्यों, इसमें आश्चर्य करने की क्या बात है ?

ललितांगी : बहन कोकिला ! हर सभ्य और सुसंस्कृत व्यक्ति को समय, स्थान और परिस्थिति का ध्यान रखकर बातें करनी चाहिए।

कोकिला : यदि तुम लोग मुझे यह बताने की कृपा करो कि मैंने कौन-सी असमय की बात कही है, तो हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करूँगी।

ललितांगी : क्या तुम बतला सकती हो कि यह कौन-सा स्थान है ?

कोकिला : अवश्य। यह मधुवन है, जहाँ अदृश्य की लाड़ली लली प्रकृति किलोलें भर रही है। उसके मधुर स्मित से दसों दिशाएँ मुखरित हो रही हैं। कलियाँ विहँस रही हैं। लताएँ, पौधे और तरु झूम रहे हैं। उस अक्षय यौवन के हृदय के स्पन्दन से समीर गतिमान् हो प्राणि-मात्र को अलौकिक शुद्ध, सात्त्विक प्रेम का सन्देश दे रहा है। उसके ललित लावण्य-युक्त स्वर्णिम शरीर से निकलनेवाली आत्मा की शीतल और स्निग्ध आभा ब्रह्म के 'सत्य-शिव-सुन्दर' रूप का दर्शन करा रही है। उसके उच्छ्वासों की गति पर गूँजनेवाले अनुपम संगीत की स्वर-लहरी से प्राणिमात्र अपनी शारीरिक क्षुद्रताओं से मुक्त हो आत्ममात् हो गये हैं। यह वह स्थान है, बहन ! जहाँ अतृप्त आत्मा अपने शरीर के नगण्य बन्धनों को तोड़, अधीर हो, चारों ओर बिखरे सौन्दर्य का पान करने लगती है।

ललितांगी : तुमने स्थान का वर्णन बहुत ही रोचक ढग से किया है। किन्तु बुद्धि ने भावों को ढँक लिया है। खैर, छोड़ो। क्या तुम यह बतला सकती हो कि यह कौन-सा समय है ?

कोकिला : अवश्य। किन्तु सर्वप्रथम मैं यह उचित समझती हूँ कि तुम

लोगों ने मेरे विचारों की जो आलोचना की है, उसका निराकरण किया जाय। बुद्धि और भावों के समन्वय से ही सत्य का उद्घाटन होता है। इनमें से किसी एक द्वारा यह असम्भव ही नहीं, कल्पनातीत भी है; क्योंकि ये 'सत्' और 'असत्' दृष्टि के दो रूप हैं। एक के बिना दूसरा अधूरा और एकाकी है। मस्तिष्क और हृदय के समन्वय से जीवन में सत्य-शिवं-सुन्दरम् का साक्षात्कार होता है। जीवन में शाश्वत आनन्द की अनुभूति होती है। बहन ललितांगी! तुमने पूछा है कि यह कौन-सा समय है, तो सुनो। यह वह मधुर वेला है, जिसमें आदिशक्ति साकार रूप धारणकर पावन वसुन्धरा पर अवतरित होती है और अपनी शाश्वत शक्ति से सृष्टि को आलोड़ित कर विश्व में नवचेतना का संचार करती है।

अचला : और परिस्थिति क्या है?

कोकिला : परिस्थिति से तुमलोगों का तात्पर्य है, श्रोताओं की मानसिक स्थिति से। इस समय तुम लोगों के हृदय शरीर के बन्धन को तोड़ चारों ओर बिखरे आनन्द को आत्मसात् कर लेना चाहते हैं!

ललितांगी : जब तुम यह सब कुछ जानती हो, तो फिर हमारे आनन्द में अपनी लम्बी व्याख्यान-माला द्वारा बाधक क्यों बनती हो?

कोकिला : मैं तुमलोगों के आनन्द में बाधक नहीं बनना चाहती। वरन् मैं तुमलोगों को आन्तरिक सौन्दर्य से परिचित कराकर उसकी अनुभूति ग्रहण करने योग्य बनाना चाहती हूँ! भौतिक सौन्दर्य से आत्मिक सौन्दर्य की ओर ले जाना चाहती हूँ।

अचला : सोचती हूँ, अब समय काफी हो चुका है। हमें शीघ्र ही खेतों में पहुँचना चाहिए।

सभी : ठीक है। चलो चला जाय।

(सब जाती हैं)

पटाक्षेप

द्वितीय दृश्य

[स्थान : गेहूँ के खेत। सर्वोदयपुरी के निवासी मिलकर गेहूँ की फसल काट रहे हैं। एक खेत में प्रियंवदा और मधुसूदन गेहूँ काट रहे हैं।]

मधुसूदन : (अधरों पर हास्य और नेत्रों में आत्म-विस्मृति लिये) प्रियंवदा ! क्या तुम अपने सौन्दर्य को देख सकती हो ?

प्रियंवदा : (नेत्रों में श्रद्धा और कपोलों पर लालिमा भरे) नहीं तो।

मधुसूदन : कितना अच्छा होता, यदि तुम भी देख सकती इस वसुन्धरा पर अवतरित आदिशक्ति के अनुपम सौन्दर्य को। श्रम का मूल्यांकन मैंने आज से पहले कभी भी ठीक-ठीक नहीं किया था।

प्रियंवदा : प्रियवर ने किसी भी जीवन-निधि के विश्लेषण मे कमी त्रुटि नहीं की है। ज़ीवन-मूल्यों के तत्त्वों के अवगाहन और अनुभूति की जितनी क्षमता मैंने नरश्रेष्ठ, तत्त्वदर्शी, कर्मवीर, शीलनिधि में देखी है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

मधुसूदन : प्रिये, तुम कभी-कभी प्रेम के उन्माद मे प्रलाप करने लगती हो। हर प्रेमिका को उसका प्रेमी विश्व में अद्वितीय, अपराजेय एव सर्वश्रेष्ठ प्रतीत होता है। प्रेम आन्तरिक सौन्दर्य प्रदान कर प्रेमी-प्रेमिका की श्रेष्ठता प्रतिपादित करता है। यही तो है प्रेम की पावन और पुनीत देन, जो गंगा-यमुना से भी निर्मल और शुभ्र चन्द्रिका से भी शीतल है। इसमे तुम्हारी कोई त्रुटि नहीं है प्रियवदा !

प्रियंवदा : प्रियवर, यह सच है कि प्रेम मे व्यक्ति की चेतना-शक्ति लुप्त हो जाती है। किन्तु यह भी सच है कि जब व्यक्ति चेतन अवस्था मे होता है, तब वह अपने प्रेमी मे निहित जीवन-निधियों को अनुभूति में पूर्ण सक्षम होता है। मेरा कथन प्रेमी-हृदय का प्रलाप या उन्माद नहीं है प्रधानवर !

मधुसूदन : सम्भव है।

प्रियंवदा : अभी आप 'श्रम' के बारे मे कुछ कह रहे थे। मेरे स्मृति-पटल पर आपका वह कथन आज भी अंकित है। इसी खेत मे कर्मवीर ने हरित दूर्वा-दल खनते हुए मेरे श्रम-बिन्दुओं को देख कहा था—'श्रम वह निधि है, जो जीवन को स्फूर्ति, ओज और चेतना प्रदान करती है।'

मधुसूदन : यह सच है। आज की यह महती सभ्यता और गगनभेदी विज्ञान 'श्रम' की ही देन हैं। जब हमारे बन्धुगण पयस्विनी विन्ध्य-तनया के तीक्ष्ण प्रवाह को रोकने के लिए बाँध तैयार कर रहे थे, उस समय उनके जीवन में अभूतपूर्व ओज और उत्साह था। क्या तुमने अपने उस ओजपूर्ण जीवन की अनुभूति की थी प्रियंवदा ?

प्रियंवदा : अवश्य।

मधुसूदन : किन्तु यह 'श्रम' का एकाकी मूल्यांकन है। आज मैंने उस अमूल्य जीवन-निधि का दूसरा पक्ष भी देख लिया है।

प्रियंवदा : क्या मुझे भी उस पक्ष की अनुभूति का सौभाग्य प्राप्त हो सकता है ?

मधुसूदन : अवश्य। मैं देख रहा हूँ कि श्रम का ऋणी जीवन ही नहीं, सौंदर्य भी है। श्रम से तुम्हारे शरीर की माँस-पेशियाँ बलिष्ठ और गठीली हो गयी है। मालूम पडता है, विधि ने स्वतः तुम्हारे एक-एक अवयव का निर्माण किया है। श्रम से उत्पन्न आभा तुम्हारे चंपक वर्ण को द्युतिमान् कर रही है। अंग-अग से कान्ति बिखर रही है। अदृश्य चित्रकार के प्यालों के रंग तुम्हारी मनोहर साड़ी में एकत्र हो गये है। आज धरा पर आदिशक्ति अपना अतुलित ओज और सौन्दर्य लिये अवतरित हुई है। सृजन को उद्यत सौन्दर्य का यह कितना मनोमोहक रूप है। सौन्दर्य की मूर्ति रति तुम्हारे सामने आने में संकोच कर रही है; क्योंकि इस समय तुम्हारे सौन्दर्य के सामने उसका सौन्दर्य हेय है। अब मैं कहूँगा, श्रम वह निधि है

जो जीवन को स्फूर्ति, ओज और चेतना प्रदान करती है तथा सौन्दर्य को आभा।

प्रियंवदा : प्रियवर, आज का समय कितना सुहावना है। प्रकृति आनन्द से विभोर हो रही है। गिरि-तनया की लोल लहरे कितनी सुन्दर लग रही हैं। इठलाता हुआ समीर खेतों के स्वर्णिम पौधों के साथ किलोलें कर रहा है। मेरा प्यारा कुरंग मोहन वह देखो! तराई में कुलाचें भर रहा है और यह मृगछौना मेरे हृदय से चिपटा विभोर हो रहा है।

मधुसूदन : वह सुनो। अहा, कितनी मधुर रागिनी है।

प्रियंवदा : यह तो परिचित स्वर मालूम पड़ता है।

मधुसूदन : ठहरो,...हाँ-हाँ, यह तो ललितांगी की स्वर-लहरी है।

प्रियंवदा : चलिये, वहीं चलें। भोजन का समय हो गया है।

मधुसूदन : चलो।

(दोनों जाते हैं। तराई में सभी एक हो ललितागी को मनोहर रागिनी का रसास्वादन कर रहे हैं। ये भी जाकर सुनने लगते हैं। गाना समाप्त होने पर विराज प्रियंवदा से कहता है)

विराज : अच्छा हुआ। आप लोग आ गये। भोजन का समय हो गया है। भोजन तैयार है, सभी लोग उस कुंज में चले।

(सब भोजन के स्थान पर पहुँचते है और यथास्थान पहुँचकर भोजन आरम्भ करते है)

ललितांगी : हम लोगों का वहुत वड़ा सौभाग्य होता, यदि आप बतलाने की कृपा करते प्रधानवर!

मधुसूदन : क्या?

ललितांगी : क्या हमारी सर्वोदय पुरी की इस ग्राम-राज्य-व्यवस्था को सारा विश्व स्वीकार कर सकता है? आप यह न समझें कि मैं

सर्वोदय के व्यावहारिक पक्ष के प्रति सन्देह रखती हूँ। वल्कि यह तो देश-देशान्तर के कोटि-कोटि विचारशील मानव-मनों में उठनेवाला कौतूहलपूर्ण प्रश्न है, और है—भौतिकवाद, राष्ट्रवाद और पूँजीवाद के नीचे पिसी क्लान्त-श्रान्त और जर्जर मानवता के लिए भादों की निविड़ निशा के मध्य एक हल्की-सी आशा की किरण !

मधुसूदन : अब हमें सर्वोदय के व्यावहारिक पक्ष के प्रति सन्देह करना ही नहीं चाहिए, क्योंकि हमारी यह ग्राम-राज्यव्यस्था सर्वोत्तम है। हम सभी यहाँ पूर्ण सुखी है। सभी मिलकर जीवन की प्रत्येक आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं और उनका उचित वितरण कर सुख-शान्ति का जीवन विता रहे हैं।

ललितांगी : किन्तु यह व्यवस्था तो साम्यवादी और समाजवादी देशों मे भी है। फिर उन्हे सर्वोदय-व्यवस्था अपनाने की क्या आवश्यकता है।

मधुसूदन : साम्यवादियों और समाजवादियो के पास केवल आर्थिक कार्यक्रम हैं, आध्यात्मिक नहीं। शरीर को हृष्ट-पुष्ट वना, किन्तु आत्मा को जर्जर कर कोई भी देश—चाहे वह समाजवाद, पूँजीवाद या अधिनायक-शाही साम्यवाद पर आश्रित हो—विश्व-मगल नहीं कर सकता। ललितागी ! क्या तुमने कभी सर्वोदय के महान् संदेश का तात्त्विक विवेचन सुना है ?

ललितांगी : जी नहीं श्रेष्ठवर, मुझे यह 'सौभाग्य अभी तक उपलब्ध नहीं है।

मधुसूदन : सर्वोदय का महान् सदेश है कि 'समानता के सिद्धान्त पर आधृत तथा अहिंसा, प्रेम, त्याग, सेवा, करुणा और मैत्री के द्वारा संचालित समाज-व्यवस्था होनी चाहिए।' प्रेम, त्याग, सेवा, करुणा, अहिंसा और मैत्री द्वारा वह व्यक्ति का ऐसा निर्माण करना चाहता है, जिसमें झूठे 'अहं' के स्थान पर विश्वात्मा से तादात्म्य की भावना हो। ईर्ष्या, मद, मत्सर और क्रोध पर अहिंसा, करुणा, सेवा

और प्रेम का आधिपत्य हो; ताकि व्यक्ति, व्यक्ति से घृणा न करे। सर्वोदय का सबसे महान् सन्देश व्यक्ति का समुचित निर्माण है। क्या तुम बतला सकती हो कि किन्हीं भी सामाजिक सिद्धांतों की आधारशिला क्या होनी चाहिए ?

ललितांगी : शीलनिधि ! वही सिद्धान्त तथ्यपूर्ण है, जिसमें विश्वमङ्गल की भावना निहित हो।

मधुसूदन : सच है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या साम्यवादी और पूँजीवादी व्यवस्था के द्वारा विश्व-मंगल हो सकता है ? क्या व्यक्ति आत्मिक सुख-शांति प्राप्त कर अपने यथार्थ स्वरूप से परिचित हो अपनी आत्मा का विकास इन व्यवस्थाओं द्वारा कर सकता है ? उत्तर होगा, कभी नहीं। क्योंकि रूस और अमेरिका के व्यक्तियों पर अनेकानेक भौतिक उपलब्धियाँ छा गयीं हैं और इनके नीचे दबी आत्मा सिसक रही है ! उनकी आत्माओं को भौतिकवादी पिशाच बन्दी बना चुका है। आज भी वहाँ के व्यक्तियो ने शान्ति और सुख के निर्मल रूप को नहीं देखा है। वहाँ घृणा, ईर्ष्या, मद, अहं और काम ने अशांति मचा रखी है। यह सच है कि उन्होने अपनी आर्थिक गुत्थियाँ सुलझा ली है, फिर भी आध्यात्मिक उपलब्धियों के बिना समाज के भीतर शान्ति सम्भव नही। व्यक्ति के स्वभाव मे ही द्वन्द्व है। उसकी मूल-वृत्तियों में परिशोधन आज की प्रधान आवश्यकता है। सामाजिक अशान्ति दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति जीवन-निधियों का उचित मूल्यांकन कर अपनी मूल-वृत्तियों को शासित करे। व्यक्ति के सुधार से ही विश्व-मंगल सभव है। साम्यवादी और पूँजीवादी कार्यक्रम अधूरा और लँगड़ा है। आज रूस और अमेरिका के मनोमालिन्य का कारण उनकी शक्ति और सिद्धान्त नहीं, बल्कि मनुष्य की आत्मा को दबाये बैठा वह दानव है, जिसके अवयव अहं, ईर्ष्या, मद और घृणा है। एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र के प्रति द्वेष का उद्गम स्थान व्यक्ति में व्याप्त द्वेष की

भावना ही है। सर्वोदय इन्हीं वृत्तियों का परिशोधन कर विश्व-मंगल की कामना करता है।

ललितांगी : क्या यह सम्भव है कि सम्पूर्ण विश्व मे सर्वोदय ग्राम-राज्य-व्यवस्था हो जाय ! यदि ऐसा हुआ, तो वह दिन कितना महान् होगा, जब प्रेम, करुणा, मैत्री, अहिंसा की भागीरथी से प्लावित वसुधरा अमरपुरी की हेयता प्रमाणित करेगी। अर्थ और अहं के स्थान पर मानवता की पूजा होगी। क्या हमलोग वह दिन देख सकेंगी प्रधानवर ? ईसा, मुहम्मद, बुद्ध और गाधी का पुनीत स्वप्न क्या इस धरा पर साकार हो सकेगा ? क्या राष्ट्रवाद और पूँजीवाद का पिशाच यह होने देगा ?

मधुसूदन : हमे इन सब प्रश्नो पर विचार नही करना है ललितांगी ! जब हम सर्वोदयपुरी मे ग्राम-राज्य की स्थापना कर सकते हैं, तो दूसरे ग्रामों में क्यों नहीं कर सकते ? संशय तो सदा कार्य मे रोड़ा ही अटकाता है। वह मानव को निराशा के गर्त में ढकेल देता है। यह कर्मलोक है, अतः सत्कर्म ही पुनीत मानव धर्म है। इसलिए हमे फलाफल की इच्छाओं को त्याग निष्काम कर्म मे प्रवृत्त होना चाहिए। निष्काम कर्म द्वारा ही विश्व-आत्मा से तादात्म्य होता है।

ललितांगी : निष्काम कर्म ?

मधुसूदन : हाँ ललितागी ! निष्काम कर्म। अब विचारो मे उलझने का समय नहीं रहा है। क्लान्त, जर्जर मानवता पर एक ओर विनाश के बादल भयकर गर्जना करते हुए घुमड़ रहे हैं, तो दूसरी ओर पूँजीवाद उसका गला घोटे दे रहा है। हमे अब कर्म के लिए उद्यत हो जाना चाहिए। (विराज से) अब अगला क्या कार्यक्रम है विराज बाबू ?

विराज : प्रधानवर, प्रतिदिन के अनुसार आज भी कुमारी प्रियवदाजी का नृत्य होगा।

मधुसूदन : हम लोग कला की देवी की अनुपम कला देखने को उत्सुक हैं। शीघ्रता कीजिये।

विराज : आज के नृत्य का नाम है, 'माँ की ममता'। मैं इसमे निहित भावनाओं को शब्दों का रूप दे उनसे आप सबको परिचित करा देना चाहता हूँ, ताकि आप नृत्य का पूर्ण रसास्वाद कर सकें। 'एक पुत्रवती तरुणी है। पूँजीवाद के दानव ने उसे क्षुधा की ज्वाला मे तिल-तिल जलकर मरने के लिए बेबस कर दिया है। वह भिक्षा माँगती है, परन्तु वहाँ भी वासना के प्रेत उसका पीछा करते हैं। वह नगर छोड वन की ओर चल देती है। वहाँ कन्द-मूल से अपनी क्षुधा-पूर्ति करती है। परन्तु वह कन्द-मूल कडुआ और विषैला होता है, जिससे उसे मूर्छा आ जाती है। एक सप्ताह तक निराहार रहने पर उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और वह अपने बालक को ही खा जाना चाहती है। किन्तु माॅ की ममता उसे ऐसा नहीं करने देना चाहती। जीवन और मृत्यु का संघर्ष चलता रहता है। माँ की ममता अधिक बलवती हो उठती है और वह अपने रोते हुए शिशु की क्षुधा को अपने मांस से शान्त करना चाहती है। वह अपनी पिण्डली का मांस काटकर शिशु को खिलाती है। परन्तु विधि की विडम्बना! वह शिशु मांस ग्रहण नहीं कर पाता; क्योंकि उसने कभी कच्चा मास नहीं खाया है। इसी बीच सर्वोदयपुरी का एक नागरिक वहाँ पहुँचता और उस तरुणी को नगर-श्रेष्ठ के सम्मुख लाकर उपस्थित करता है। नगर-श्रेष्ठ उसे अभय का आश्वासन देते हैं।' अब आप लोग नृत्य देखें।

(कुमारी प्रियंवदा का भाव-पूर्ण नृत्य होता है। नृत्य के प्रभाव से दर्शकों की आँखें डबडबा जाती हैं। नृत्य समाप्त होते ही एक नगर-रक्षक प्रवेश करता है।)

नगर-रक्षक : (प्रणाम करते हुए) नगर-प्रधानजी को नगर-श्रेष्ठजी ने

याद किया है। आज हमारे नगर-कोष पर चार डाकुओं ने हमला किया था, परन्तु रक्षकों की सतर्कता के कारण उनका प्रयास विफल हो गया तथा वे वन्दी बना लिये गये हैं।

मधुसूदन : नगर-श्रेष्ठजी को हमारी तरफ से अभिवादन कर पश्चात् कहो कि हम शीघ्रातिशीघ्र पहुँच रहे है।

(सब में हलचल मच जाती है, सबका प्रस्थान)

पटाक्षेप

तृतीय दृश्य

[स्थान : नगर-रक्षक सैन्य का कार्यालय। प्रांगण में प्रधान प्रबन्धक सेण्ट जेराल्ड एवं अन्य दो प्रबन्धक (वजीर खाँ और मनोहर) तथा कुछ नगर-रक्षक बैठे हैं। समीप ही वन्दी किये गये चार डाकू खड़े हैं। प्रधान प्रबन्धक एवं अन्य प्रबन्धकों के बीच चल रहे वार्तालाप को सभी सुन रहे हैं।]

सेन्ट जेराल्ड : (चिन्तित मुद्रा में) आज विश्व के सभ्य कहे जानेवाले राष्ट्रों के मध्य विध्वसक अस्त्रों के निर्माण करने की होड़ लगी है। पता नहीं कि विस्फोट की चिनगारी कब सुलग जाय और मानव की वैभवशाली सभ्यता और उसका गौरवपूर्ण इतिहास, जिसने आज चन्द्रलोक में भी अपनी प्रतिभा की पताका फहरा दी है, इस धरा से नामशेष हो जाय। विश्व-मानस क्षुब्ध और त्रस्त हो उठा है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के प्रति घृणा तथा शंका की भावनाएँ रखता है।

वजीर खाँ : क्या यह सच है कि जो दो वीर अंग्रेज युवक भारत आये थे, वे क्रिसमस द्वीप को सत्याग्रह के लिए जा रहे हैं, जहाँ ब्रिटेन अणु-परीक्षण करनेवाला है?

सेन्ट जेराल्ड : इन नवयुवकों का प्रयत्न अत्यन्त प्रशंसनीय है। इन्होने अपने पावन कार्य से ब्रिटेन का कलंक धो दिया है। उनका यह सत्याग्रह विश्व से चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है, 'आप यह न समझें कि ब्रिटेन की माताओं ने केवल युद्ध-प्रिय आदमखोरों को ही जन्म दिया है, वरन् उन्होंने उन वीर-हृदयों को भी जन्म दिया है, जो शुद्ध और पवित्र हृदय से मानवता के पुजारी ही नहीं, मानवता की सुख-शान्ति के लिए हँसते-हँसते अपनी बलि भी देने को प्रस्तुत हैं।

मनोहर : कितना अच्छा होता, यदि इन वीर युवकों का अनुगमन अमेरिका और रूस के नागरिक भी करते और विश्व को विध्वस से बचा लेते। क्या रूस और अमेरिका के नागरिको मे उदात्त भावनाओं का अभाव हो गया है ? क्या वहाँ मानवता का पुजारी कोई नही है ? क्या वे राष्ट्रवाद के अहं से अन्धे होकर मानवता के विनाश को नहीं देख पा रहे हैं ? यदि ऐसा नहीं, तो फिर वे सुसंगठित हो अपने देश के शासकों की निरंकुशता को क्यों नहीं रोकते ?

सेण्ट जेराल्ड : भौतिकवादी सभ्यता ने उनकी आत्मा को मलिन कर दिया है। उनकी आत्मा मे वह ओज नहीं रहा, जो सत्य को पहचान सके। आत्मा की शक्ति बतलाने के लिए यदि रूस या अमेरिका मे तोप के सामने निर्वस्त्र सीना तानकर खड़ा होनेवाला एक भी गांधी पैदा हो जाय, तो मानवता विध्वंस की लपटों से त्राण पाकर, आत्मा के शाश्वत सगीत में विभोर हो जाय।

वजीर खाँ : और यदि भारत ऐसा कुकृत्य करता तो ?

सेण्ट जेराल्ड : देश के कोटि-कोटि नर हँसते-हँसते मानवता की वेदी पर अपना बलिदान कर देते। भारतवासियो की बलिदान और त्याग की भावना उनकी सांस्कृतिक देन है। यह शताब्दियों से गौरवशाली परम्परा का परिणाम है। भारतीय स्वतन्त्रता-सग्राम में भारत ने इसका अनूठा उदाहरण उपस्थित किया था। सत्य के उन

आह्वान पर जनसागर में तूफान आ गया था। आत्माएँ झंकृत हो सत्य के आलिंगन के लिए विकल हो उठी थीं। मृत्यु को सार्थक बनाने की प्रतिस्पर्धा चल रही थी। क्षणभंगुर भौतिकता त्राहि-त्राहि कर आत्मा के शाश्वत प्रकाश से घबड़ा भागी जा रही थी। हँसते-हँसते मरण को वरण करनेवालों की आत्मा का वह ओज क्या विश्व कभी भूल सकेगा? अंग-अंग से हजार-हजार दिनकर की प्रखर रश्मियाँ निकल रही थीं। भला कौन उन्हें सहन कर सकता था। एक की मृत्यु हजार का आह्वान था। त्याग और बलिदान की अनुपम कहानी! ऐसा अलौकिक दिव्य यज्ञ विश्व ने शायद ही कभी देखा हो!

मनोहर : और सच तो यह है कि हमे भारत के प्रति ऐसी कल्पना भी नहीं करनी चाहिए। उसने तो क्लान्त और त्रस्त मानवता को अणु-अस्त्रों के स्थान पर 'पंचशील' देकर विनाश से संरक्षण का आश्वासन दिया है। हो सकता है, भारत के प्रति व्यक्त इस दृष्टिकोण को विश्व झूठे राष्ट्रवाद की भावना से प्रेरित समझे। किन्तु यह तो एक निर्विवाद सत्य है कि भारतीय परम्परा बलिदान और त्याग की एक गौरवशाली परम्परा है।

(कुछ दूर बैठे दस्यु आपस में वार्तालाप करते हैं)

बलवीर सिंह : मालूम पड़ता है, यहाँ के नागरिकों का मानसिक स्तर काफी ऊँचा है। सैनिक होते हुए भी, देश और विदेश या यों कहा जाय कि विश्व की समस्याओं का, कितना तार्किक एवं गहन विवेचन ये लोग कर रहे हैं। हम नहीं सोच सकते थे कि यहाँ के व्यक्तियों का स्तर इतना उच्च हो सकता है।

नगर-रक्षक : महानुभाव, आप लोगों के वार्तालाप के बीच बाधा डालने और अशिष्टता के लिए क्षमा-याचना करते हुए आपसे कुछ वार्तालाप करने का सुयोग प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

वलवीर सिंह : क्या कहा नगर-रक्षक 'महानुभाव' ?

नगर-रक्षक : जी हॉ। क्या मुझसे कोई त्रुटि हुई ? हो सकता है, मै आपसे अपरिचित होने के कारण उन आदरसूचक शब्दों का उपयोग न कर सका होऊँ, जिनके लिए आप सर्वथा योग्य हों।

वलवीर सिंह : नहीं नगर-रक्षक। हम यहाँ के वातावरण को देखकर चकित हैं। सैनिक अधिकारियों का विचार-विश्लेषण सुनकर हमे कम आश्चर्य नहीं हुआ था, लेकिन आपकी विनम्रता ने तो हमे अत्यधिक उलझन में डाल दिया है। डाकू बन्दियों के प्रति यह सौजन्यता क्या आश्चर्य उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त नही है ?

नगर-रक्षक : नहीं महोदय ! यह तनिक भी आश्चर्यजनक नहीं है। आप डाकू हों या महात्मा, आप बन्दी हों या स्वतन्त्र नागरिक, सर्वप्रथम आप मानव हैं और मानवता का आदर करना प्रत्येक मानव का प्रथम कर्तव्य है। मानवता के प्रति व्यक्त आदर यथार्थतः उस महान् ज्योति के प्रति आदर व्यक्त करना है, जो जड़-चेतन मे व्याप्त है। क्या आप हमे यह भी सौभाग्य प्रदान नहीं करना चाहते कि हम एक बार आपके माध्यम से उस शाश्वत, उस अखण्ड ज्योति को नमन कर सके जो आपके कण-कण में व्याप्त है। आप भले ही कृपणता करें, परन्तु हम लोग अपने अधिकारों एवं कर्तव्य के प्रति सजग हैं, विश्व की कोई भी शक्ति हमे इनसे वंचित नहीं कर सकती।

वलवीर सिंह : लगता है, यहॉ के अणु-अणु से आत्मा का प्रकाश प्रस्फुटित हो रहा है और जर्जर, दीन-हीन, शोषित, अपमानित आत्मा का कल्मष धो देना चाहता हूँ। यहॉ की हर वाणी आत्मा का संदेश मुखरित कर रही है।

नगर-रक्षक : बन्धुवर ! हम लोग कभी किसीसे घृणा नहीं करते हैं। क्या आपने अभी तक सर्वोदयपुरी की जीवन-प्रणाली नहीं देखी ?

वलवीर सिंह : अभी तक तो सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है।

नगर-रक्षक : सर्वोदयपुरी के नागरिक घृणा, अहं, स्वार्थ, द्वेष और ईर्ष्या पर त्याग, सेवा, प्रेम, क्षमा तथा उदारता के माध्यम से जीवन में छिपे अनन्त सौन्दर्य को मुखरित करना चाहते है। वे जीवन की सार्थकता भौतिक उपलब्धियों में नहीं मानते, वल्कि अपने चारों ओर विखरे अनन्त सौंदर्य के पान करने में मानते हैं। मानव की द्विपक्षी प्रकृति में चलनेवाले संघर्ष का समाधान आत्मानन्द में करना चाहते है।

(दूसरे नगर-रक्षक का प्रवेश)

दूसरा नगर-रक्षक : न्यायाधिकरण के सभी माननीय सदस्यगण आ चुके हैं। अतः आप लोग न्यायालय मे शीघ्र ही उपस्थित हों।

(सभी का प्रस्थान)

पटाक्षेप

चतुर्थ दृश्य

[स्थान—न्यायालय। नगर-श्रेष्ठ देवेन्द्रनाथ, नगर-प्रधान मधुसूदन और कोकिला न्यायाधीशों के आसन पर आसीन हैं। दर्शकगण बड़ी संख्या में उपस्थित हैं। प्रधान प्रबन्धक बन्दियों को लिये नगर-न्यायालय में प्रवेश करता है।]

प्रधान प्रबन्धक : (नमन करके) महानुभाव, इन चारो बन्दियों ने हमारे नगर-कोष को लूटने का दुस्साहस किया है। यथोचित न्याय के लिए न्यायालय में उपस्थित हैं। दस्यु-दल के प्रधान ये श्री बलवीर सिंह हैं तथा इनके ये तीनों साथी श्री सुरेन्द्रसिंह, श्री महेशसिंह तथा श्री वीरेंगसिंह हैं।

नगर-श्रेष्ठ : श्री वलवीर सिहजी, क्या यह सच है कि आपने नगर-कोष को लूटने का प्रयास किया ?

वलवीर सिह : जी हॉ ।

नगर-श्रेष्ठ : क्या हम इसका कारण जान सकते हैं ?

वलबीर सिंह : मैं इसकी आवश्यकता नहीं समझता । हमने अपराध किया है । हमें अपराध का दण्ड दिया जाय ।

नगर-श्रेष्ठ : सुसभ्य नागरिक ! यह न्यायालय केवल कल नहीं, जो बटन दबाने का प्रत्युत्तर कार्य से देकर अपना उत्तरदायित्व समाप्त कर दे । अपराध के प्रत्युत्तर में दण्ड देना ही इस न्यायालय का उद्देश्य नहीं है, वरन् अपराधी की मनोवृत्ति का समुचित विश्लेषण कर उसका पूर्ण समाधान प्रस्तुत करना भी हमारा उद्देश्य है, ताकि भविष्य में अपराध का अस्तित्व निर्मूल हो जाय । क्या अब आप हमें अपराध का कारण बतला सकते है ?

वलवीर सिंह : श्रेष्ठवर ! लूट और चोरी का कारण आज तक कभी भी दूसरा नहीं हुआ है और वह सर्वविदित है । उसकी महान् शक्ति से कोई अपरिचित नहीं है ।

नगर-श्रेष्ठ : सुसभ्य नागरिक ! अपना उत्तर अधिक स्पष्ट कीजिये ।

वलवीर सिंह : श्रेष्ठवर ! मैं समझता हूँ कि इस कुलीन-मण्डली ने कभी क्षुधा की भयंकर लपटों को नहीं देखा है । अन्यथा मुझे अपना उत्तर स्पष्ट करने की आशा न होती । श्रेष्ठवर ! क्षुधा की प्रचण्ड ज्वालाओं ने बड़े-बड़े साम्राज्यों को देखते-देखते श्मशान बना दिया है । क्षुधा की एक-एक चिनगारी मे हजार-हजार हाइड्रोजन बमों की शक्ति है । इतिहास साक्षी है, रोटी के एक टुकड़े ने अगणित सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्थाओं को बदल डाला है । कोई भी व्यवस्था तब तक स्थायी नहीं हो सकती, जब तक वह रोटी का आश्वासन न दे, चाहे वह प्रजातन्त्र ही क्यों न हो ।

नगर-श्रेष्ठ : सुसभ्य नागरिक ! आपके कथन की सत्यता को सर्वोदय ने

पहले ही मान लिया है। केवल मान ही नहीं लिया, उसकी सत्यता को प्राकृतिक नियमों द्वारा न्यायोचित प्रमाणित कर उसे और भी अधिक प्रभावशाली बना दिया है। सर्वोदय का मन्तव्य है कि व्यक्ति को भोजन उसी प्रकार स्वतन्त्र रूप से प्राप्त होना चाहिए, जिस प्रकार प्रकृति के अन्य प्राणियों को प्राप्त होता है। अभागे मनुष्य को छोड प्रकृति के अन्य प्राणियो को भोजन-प्राप्ति में कोई बन्धन नहीं है। मनुष्य भी एक प्राणी है। अतः उसे भी उसकी जीवन-रक्षा के लिए भोजन मिलना ही चाहिए। भोजन प्राणियों की जीवन-रक्षा की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है, जिसकी पूर्ति उदार प्रकृति ने सबके लिए समान रूप से की है। उसने अपनी किसी भी कृति के प्रति अन्याय नहीं किया है।

बलबीर सिंह : फिर अभागा मनुष्य भोजन की खोज में तड़प-तड़पकर क्यों मरता है ? मैंने अपने पिता को इसी भोजन की तलाश में तड़प-तडपकर दम तोड़ते देखा है। कितना करुण दृश्य था वह ! उन्हे ज्वर आता था। परिवार को पूरा दिन भोजन प्राप्त नहीं हुआ था। वे दूसरे दिन अपनी पत्थर फोड़ने की मजदूरी पर चले गये। शरीर में शक्ति तो थी ही नहीं। कुछ ही क्षणो में उन्हें मूर्च्छा आ गयी। मुझे सूचना मिली। मैं दौड़ा गया और मेरे सामने ही तड़प-तड़पकर उन्होंने दम तोड़ दिया। मैंने उसी समय यह प्रण किया कि मैं ऐसी व्यवस्था को, जिसमे मनुष्य दो रोटी के लिए प्रकृति के अमूल्य रत्न, जीवन को बलिदान करने के लिए बेबस हो जाता है, बदल दूँगा। प्रकृति से इस अन्याय का बदला लूँगा।

नगर-श्रेष्ठ : सुसभ्य नागरिक ! इसमें प्रकृति का कोई दोष नहीं है। प्रकृति ने किसीके साथ अन्याय नहीं किया है। उसने खुले हाथो सभी को भोजन दिया है। मनुष्य तो उसका सबसे अधिक लाड़ला प्राणी है, जिस पर प्रकृति को नाज है, फिर भला उसके साथ वह कैसे अन्याय करती ?

बलबीर सिंह : तुच्छ-से-तुच्छ जन्तु भोजन के भण्डार मे आनन्द मना रहे है। और मनुष्य ! वह अभागा प्राणी दो रोटियों के लिए खून-पसीना बहा रहा है, फिर भी उसे पर्याप्त भोजन नसीब नहीं होता। वह अपनी आँखों के सामने क्षुधा से पीडित अपने हृदय के टुकड़ों को दम तोड़ते देखता है और अन्त मे स्वयं भी छटपटा-छटपटाकर मृत्यु को आलिंगन कर लेता है। इससे बढ़कर प्रकृति का और क्या अन्याय हो सकता है !

नगर-श्रेष्ठ : यह व्यवस्था प्रकृति द्वारा निर्मित नहीं है, बल्कि इसका उत्तरदायी स्वयं मनुष्य है।

बलबीर सिंह : मनुष्य ! मनुष्य भला कैसे उत्तरदायी हो सकता है ! वह तो प्रकृति द्वारा निर्मित अदृश्य के हाथ का खिलौना है, जिसे तोड़ने-फोड़ने में ही उस शिल्पी को आनन्द आता है। और निरीह मानव रो-रोकर जीवन की जघन्यता को सार्थक करता है। जीवन—दुःख-दैन्य का सुन्दर सुसज्जित प्रासाद !

नगर-श्रेष्ठ : मैं पुनः कहता हूँ कि प्रकृति मनुष्य के दुःख-दैन्य के लिए उत्तरदायी नहीं है। मनुष्य स्वतः ही इसके लिए उत्तरदायी है। प्रकृति ने मनुष्य को स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति प्रदान कर उसे अपनी सर्वोत्कृष्ट कृति घोषित किया है। यह वह महान् कृति है, जो प्रकृति से भी सहस्रगुना अधिक निर्माण की शक्ति रखती थी। प्रकृति इस अद्भुत कृति को देख आनन्द से विभोर हो गयी थी। किन्तु आज वही प्रकृति सिर पीट-पीटकर रो रही है।

बलबीर सिंह : मेरी समझ में कुछ भी नहीं आया।

नगर-श्रेष्ठ : प्रकृति ने मानव को सृजन शक्ति और स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति से विभूषित कर मानसिक दासता से मुक्त रखा। मानव ने इन्हींके बदौलत प्रकृति की सृष्टि को अपनी कृतियों से सजा-सँवारकर उसके सौन्दर्य को निखार दिया। इतना ही नहीं, उसके कृत्रिम-चन्द्र उपग्रह को पृथ्वी की परिक्रमा करते देखकर स्वयं प्रकृति भी आश्चर्य-

चकित रह गयी। प्रकृति की एक आँख में आँसू और दूसरी में हास्य है। जब वह मानव की सफलता का विश्लेषण करती है, तो उसके अधरों पर मधुर स्मित की रेखाएँ खिंच जाती हैं। किन्तु जब वह अपनी श्रेष्ठ कृति को थोथे अहं, स्वार्थ, ईर्ष्या और घृणा में लिप्त हो, मानव सभ्यता और प्रकृति की सुन्दर सृष्टि को नष्ट करने को उद्यत देखती है, तो सिर पीट-पीटकर रोती है। मानव को दिया गया वरदान आज भस्मासुर का वरदान प्रमाणित हो रहा है। भय है, कहीं उसका दूसरा पक्ष भी प्रमाणित न हो जाय। स्वार्थी मानव एक ओर जहाँ झूठी व्यवस्थाओ का निर्माण कर आदमखोर वन मानव का शोषण करता रहा, वहीं दूसरी ओर वह अपने थोथे अहं में पागल हो, झूठे राष्ट्रवाद और अन्य वादों की उलझन मे फँस, आज विनाश के लिए उद्यत है। मानव ने अपने स्वर्ण-अक्षरों से लिखित इतिहास पर सदा से कालिख पोती है। प्रकृति ने उसे देवत्व की श्रेणी पर आसीन करने के लिए निर्मित किया था, परन्तु उसने दानवों के मध्य बैठकर अपने को धन्य समझा। इस पर तुर्रा यह कि वह अपने-आपको अधिक सुसभ्य और सास्कृतिक होने का दावा करता है। हाँ, तो बलवीर सिंहजी! आपकी आवश्यकताओं की पूर्ति कितनी धन-राशि से हो सकती है?

बलवीर सिंह: मुझे भिक्षा ग्रहण करना नहीं आता। यह कापुरुषों को ही शोभा देता है। फिर मैं यह 'धर्म-यज्ञ' अपनी क्षुधा की पूर्ति के लिए ही नहीं कर रहा हूँ।

नगर-श्रेष्ठ: तो फिर आप यह सब क्यों कर रहे है?

बलवीर सिंह: क्यो कर रहा हूँ? यह मुझसे क्यो पूछ रहे हैं? यह प्रश्न तो आपको उन आदमखोर, दंभी, लोलुप दुर्योधन के स्वार्थी बन्धुओ से पूछना चाहिए, जिन्होंने अपने घृणित स्वार्थ के लिए हजारो निरीह व्यक्तियों के प्राण लेने में भी कभी आगा-पीछा नहीं देखा है। मैं तो केवल अर्जुन द्वारा चलाये गये पुनीत यज्ञ में ही आहुति दे

रहा हूँ। श्रेष्ठवर, मैं आपको भी इस पवित्र यज्ञ की आहुति के लिए आमंत्रित करता हूँ। क्या आप गीता के स्वधर्म-पालन के महान् सन्देश को नहीं सुन रहे हैं ?

नगर-श्रेष्ठ : हम स्वधर्म का ही पालन कर रहे हैं, सुसभ्य नागरिक !

बलबीर सिंह : हर व्यक्ति यही स्वधर्म-पालन का बहाना कर अपने प्रधान कर्तव्य से विमुख हो जाता है। आज के बुद्धिवादी और भौतिकवादी व्यक्ति अपने स्वार्थों में इतने विरत हैं कि वे क्षणमात्र के लिए भी अपने स्वार्थ से विमुख हो मानव-कल्याण का कार्य करना नहीं चाहते। उनमे अन्याय और शोषण के प्रति आवाज बुलन्द करने की शक्ति ही नहीं रह गयी है। वे तो गाड़ी में जुते उन बैलों के-से हैं, जो चाबुक खाते हुए बिना सिर उठाये भार ढोते चले जाते हैं। लगता है, आत्मा ने साथ छोड़ दिया है।

मधुसूदन : यह आप कैसे कह सकते हैं कि शोषण और अन्याय के प्रति आवाज उठाने की क्षमता जनता में नहीं रह गयी है ?

बलबीर सिंह : मैं कह सकता हूँ और दावे के साथ कह सकता हूँ। यदि कभी आपने जीवन में उतरकर देखा होता, तो आपको ऐसे ज्वलन्त प्रमाण मिलेंगे कि आप इस प्रकार के प्रश्न भविष्य मे कभी न कर सकेंगे। हमारे नन्हे-नन्हे बच्चे दिन-प्रतिदिन सूखते चले जा रहे हैं। उन्हें शुद्ध दूध भी उपलब्ध नहीं होता। आज मैं या आप भला ऐसा कौन व्यक्ति है, जो यह नहीं जानता कि जो दूध हम अपने बच्चों को देते हैं, उसमें मिलावट होती है। फिर क्या आपने कभी इसका प्रतिकार किया है ? इन सब बातों का प्रतिकार न करना अपने बच्चों के साथ अन्याय नहीं है ? नगर-प्रधानजी ! मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिये।

मधुसूदन : सच है ! यह बहुत बड़ा अन्याय है।

बलबीर सिंह : यह हुआ छोटे रूप में। अब इसे ही आप विस्तृत रूप से देखेंगे, तो पायेंगे कि हम स्वार्थी पूँजीपतियों के शोषण को सहन किये

जा रहे हैं। और आगे देखिये, आज विज्ञान की अमित शक्ति पाकर मानव बौखला उठा है और वह विनाश की ओर उन्मुख है। किन्तु क्या विश्व के मानव इसका भी विरोध कर रहे है ? नहीं कर रहे हैं और न कर सकते हैं, क्योंकि उनकी आत्माएँ स्वार्थों से ढँक गयी हैं। दिन-रात अन्याय और शोषण को बढ़ावा देते-देते हमारी आत्माएँ पतित हो गयी हैं और हम उन्हीं पतित आत्माओं को प्रतिदिन मन्दिर, मस्जिद और गिरजाघर मे ले जाकर वहाँ की भूमि को अपावन करते हैं। ईसा, बुद्ध मुहम्मद और कृष्ण हमारी कायरता और पतन पर धिक्कारते हैं, फिर भी हम उनके पवित्र नाम को अपनी पतित जिह्वा से उच्चारण कर अपवित्र करते हैं। धिक्कार है मानव के ऐसे स्वाभिमान को ! मैं उससे घृणा करता हूँ।

नगर-श्रेष्ठ : मनुष्य से घृणा करना मनुष्यत्व को तिलाजलि देना है। घृणा करनेवाले व्यक्ति की आत्मा दुर्बल होती है। घृणा करना बहुत बड़ा पाप है।

बलबीर सिंह : पाप और पुण्य, धर्म और अधर्म एक विवादग्रस्त एव बेबुनियादी बात है। विज्ञान ने धर्म की जड़ें हिला दी हैं। वह आज धर्म के दीवालियेपन को भरे बाजार चिल्ला-चिल्लाकर नीलाम कर रहा है। फिर घृणा ? हाँ, मुझे घृणा करने दीजिये उन आदमखोर पूँजीवादियों पर, जिन्होंने घर-घर को श्मशान बना दिया है, जहाँ जीवित मुर्दे दफनाये जाते हैं। मुझे घृणा करने दीजिये उन बुद्धिवादियों पर, जो मानवता के विनाश का तांडव-नृत्य देखना चाहते हैं। मैं घृणा करता हूँ उस झूठे राष्ट्रवाद पर, जो मानव-मानव के मध्य हृदय मे द्वेष लेकर दीवाल बन खड़ा होता है। मैं घृणा करता हूँ उन झूठे धर्मों पर, जो मानव-मानव के मध्य द्वेष के कीटाणु फैलाते हैं। सबसे अधिक घृणा करता हूँ उन कायरो पर, जिनमें अन्याय के प्रतिकार करने की क्षमता नष्ट हो गयी है, आत्मा मलिन पड़ गयी है और चेतना लुप्त होती जा रही है, जो मृतप्राय जीवित हैं। आप

कहते हैं, मैं घृणा न करूँ। क्यों न करूँ ? यह तो प्रकृति का वरदान है, जो व्यक्ति के शौर्य का स्रोत है। आज मेरे हृदय मे एक भयानक अन्धड़ है। उदधि के अन्तस्तल में उठा हुआ वह विप्लव है, जो भगवान् भास्कर और हिमांशु को लाकर रत्नाकर में विलीन कर देना चाहता है। क्या आप नही जानते कि इस विप्लव का शक्ति-स्रोत वही घृणा है ? यदि घृणा का कोई अर्थ नहीं था, तो प्रकृति ने उसे मानव-स्वभाव का एक अंग क्यों बनाया ? मैं घृणा करता हूँ और करता रहूँगा; क्योंकि मैं जीवित हूँ, मुर्दा नहीं हूँ। मेरी आत्मा दानवों को नष्ट करने की क्षमता रखती है।

नगर-श्रेष्ठ : आप जिनसे घृणा कर रहे हैं, वे घृणा के नहीं, करुणा के पात्र हैं।

बलवीर सिंह : करुणा, मानवता, मैत्री, प्रेम, त्याग, सेवा, ये सब शब्द मानव की स्वार्थी साँसों मे गल गये हैं और शेष है उनका ऊपरी खोखा। मुझे छल-कपट-प्रपंच नहीं आता कि मैं अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए उन राजनायिकों जैसा प्रतिदिन गला फाड़-फाड़कर मानवता और करुणा की दुहाई दूँ और सड़कों पर पड़े अपंगु, कंकालवत्, जीवित मुर्दों को देखकर नाक सिकोड़ूँ ? क्या यही है आपकी मानवता और करुणा का सही अर्थ ? करुणा ! वह तो भगवान् बुद्ध की वाणी मे ही मूर्तिमान् होती थी। जब करुणामय अपंगुओं को गोदी मे उठा उनकी शुश्रूषा स्वयं करते थे, तो करुणा अपने-आपको धन्य समझती थी। मानवता अपने-आपमें सार्थकता अनुभव करती थी। परन्तु आज ? आज 'करुणा' और 'मानवता' शब्द वाणी के चोचले हैं, उसके शृंगारमात्र हैं। आप कहते है कि करुणा को ग्रहण करूँ। यह कभी नहीं हो सकता। मैं शौर्य का उपासक हूँ, वचकता और कायरता का नहीं।

नगर-श्रेष्ठ : जिस अर्थ मे आप शौर्य के उपासक हैं, उस 'शौर्य' का ऐतिहासिक काल समाप्त हो गया है। वह भी इतिहास का स्वर्णिम

काल था, जब रण में शौर्य प्रदर्शित करनेवाले वीर की पूजा होती थी। 'शौर्य' उस काल का प्रधान नैतिक आदर्श था। परन्तु हम तो आज अणु-युग में है। आज के रण में शारीरिक शौर्य का प्रदर्शन नहीं, बुद्धि का कौशल दिखाना अपेक्षित होता है। समय के साथ शब्दों में निहित भाव भी बदलते रहते हैं। भाव सदा समय के साथ चलते है, परन्तु शब्दों की गति मन्द और सुस्त होती है। भावों में चेतना होती है और शब्दों मे जड़ता। शब्द युगधर्म के अनुसार परिवर्तित होने की क्षमता से रहित हैं। 'शौर्य' शब्द वही है, परन्तु भाव बदल गये हैं। आज उस शौर्य की पूजा नहीं होती, जो असि से किसीके शीश का छेदन करता है। बल्कि आज उस शौर्य की पूजा होती है, जो सृजन में व्यक्त होता है। क्या आप हमारे यहाँ की न्याय-व्यवस्था से परिचित है?

बलवीर सिंह: कभी सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ।

नगर-श्रेष्ठ: हमारी न्याय-व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य अपराधों के कारणो से परिचित हो उन्हें समूल नष्ट करना है। हमने आप लोगों के लिए दो व्यवस्थाएँ दी है, उनमें से कोई भी एक आप पसन्द कर सकते हैं। प्रथम, हम आपको इतनी निधि देने को प्रस्तुत हैं, जिससे आप अपना जीवन भले लोगों के समान व्यतीत कर सकें। द्वितीय, आप सर्वोदयपुरी के नागरिक बन वह सुअवसर प्राप्त कर सकते हैं, जो मानव-धर्म का स्वस्थ विकास करता है।

बलवीर सिंह: हमें आपकी द्वितीय व्यवस्था मान्य है। हम देखना चाहते हैं कि वातावरण व्यक्ति के विचारो का परिशोधन कहाँ तक कर सकता है?

नगर-श्रेष्ठ: हम अपना निर्णय घोषित करते हैं कि श्री बलवीर सिंह, श्री सुरेन्द्र सिंह, श्री महेश सिंह तथा श्री वीरेश सिंह आज से सर्वोदयपुरी के नागरिक हैं तथा उन्हें यहाँ की सभी सहूलियते बिना किसी भेद-

नाव के उपलब्ध होंगी। अब न्यायाधिकरण की बैठक समाप्त घोषित की जाती है।

पटाक्षेप

पञ्चम दृश्य

[स्थान : कछवाहा। नीलम, अचला, कादम्बिनी, ललितांगी, प्रियंवदा आदि सहेलियाँ पौधों को जल दे रही हैं। सभी अलग-अलग अपने-अपने काम में संलग्न हैं। ललितांगी और नीलम आपस में वार्तालाप भी करती जाती हैं।]

ललितांगी : बहन नीलम ! यह देखो, मदमाते भ्रमर हृदय-वीणा पर मादक संगीत गुनगुनाते हुए नन्हीं-नन्हीं कलिकाओं को गले लगाने के लिए कितने आतुर हो रहे है। विह्वल भ्रमर उन्माद में पागल हो कैसे खिचे चले आ रहे है ! भ्रमरों में यह विह्वलता और यह खिंचाव क्यों ?

नीलम : यही तो है प्रकृति का महान् सत्य 'आकर्षण'। अपनी मादकता के उन्माद से विह्वल हो अलौकिक शक्ति की प्रेरणा से दो अपरिचित प्राणी अपने हृदयों को उछालते हुए, एक-दूसरे पर निछावर करते हैं और एकत्व की गरिम अनुभूति के माध्यम से अक्षय सौन्दर्य की सरसता में गोते लगा जीवन सार्थक करते हैं। सृजन का यह उन्माद कितना मादक, कितना नशीला और कितना अर्थपूर्ण है। अणु-अणु और परमाणुओं मे व्याप्त यह 'आकर्षण' प्रकृति को स्फूर्ति, चेतना, सौन्दर्य और ताजगी प्रदान कर उसके अभिनव-यौवन रूप को चरितार्थ करता है।

ललितांगी : क्या यह आकर्षण अपराजेय है ? क्या प्राणी इस पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता ?

नीलम : नहीं बहन, नहीं। इस आकर्षण पर विजय प्राप्त करना जड़ता को स्वीकार करना है। यह आकर्षण ही तो हमारी सतरंगी भावनाओं, कला, संस्कृति और सौन्दर्य का अक्षय स्रोत है। हमारे अन्तस्तल में छिपे इस महान् सत्य के कारण ही सृष्टि हमें अलौकिक सौन्दर्य से विभूषित और जीवन अर्थ और तथ्य-पूर्ण प्रतीत होता है।

ललितांगी : लेकिन विज्ञान तो इस शक्ति पर विजयी होना चाहता है।

नीलम : असम्भव ! विज्ञान की भी उसकी अपनी सीमाएँ हैं, उसका अपना क्षेत्र है। प्रकृति को सदा जड़ समझनेवाला विज्ञान एकांगी है। उसमें प्रकृति में निहित चेतन-शक्ति की अनुभूति प्राप्त करने की शक्ति नहीं है। आकर्षण के माध्यम से चलनेवाले अनन्त, अपार, अक्षय सृजन की सुनियोजित व्यवस्था क्या जड़ प्रकृति द्वारा संभव हो सकती है ? यह 'आकर्षण' का सिद्धान्त विज्ञान को अपनी भूल स्वीकार करने को विवश कर रहा है। अपनी सफलताओं के अहं से पागल विज्ञान अभी भी यह नहीं समझ सका है कि विश्व का आरम्भ सर्वप्रथम कैसे हुआ ? आज भी परमाणु विज्ञान के लिए उतना ही जिज्ञासा का विषय बना हुआ है, जितना कि आज से चौबीस सौ वर्ष पहले अरिस्टाटल के लिए था। भौतिक सफलताओ को प्राप्त करना अलग बात है और तत्त्व प्राप्त कर सत्य का उद्घाटन करना अलग। विज्ञान अपनी जड़ता में सीमित है, उसका क्षेत्र असीम नहीं है।

ललितांगी : आज मैं अनुभव कर रही हूँ कि प्रकृति की हर वस्तु अपने-आपमें अपरिमित सौन्दर्य समेटे हुए है। ये इठलाते हुए पौधे, ये लहलहाती हुई वल्लरियाँ, ये हँसते हुए सुमन ! लगता है, हृदय मे युग-युग से संचित आनन्द उँड़ेले दे रहे हैं। वे देखो, उछलते हुए मृग-शावक, जो गिरिमाला की गरिमा को अपनी एक ही उछाल मे

माप लेना चाहते हैं। सुन रही हो नीलम ! यह मादक समीर क्या कह रहा है ?

नीलम : क्या कह रहा है ?

ललितांगी : कुछ भी नहीं।

नीलम : नहीं, कुछ भी तो !

ललितांगी : यह चंचल समीर पूछ रहा है कि जीवन क्या है ?

नीलम : तुमने क्या उत्तर दिया ?

ललितांगी : मै क्या उत्तर देती। यह प्रश्न यदि पूछना ही है, तो कोई जा पूछे हृदय-निधि की उत्तुंग तरंगों में समाहित ज्वार से कि वह कौन है ? गिरि-तनया के हृदय का मन्थन करनेवाली भँवर से पूछे कि वह कौन है ? रक्तिम रसों में प्रवाहित प्रवल प्रवाह से पूछे कि वह कौन है ? और पूछे उस लाड़ली लली से, जो भावनाओं की मनोहर वाटिका मे सतरंगी ओढ़नी ओढ़ राका की चाँदनी मे आँख-मिचौनी खेल रही है। कोई पूछे नील-गगन में किलोले करती हुई उन किरणों से, जो प्रियतम वारिधि के प्रेमी हृदय की गहराई नापने में ठगी-सी रह गयी हैं। कोई पूछे उस अदृश्य चितेरे के चित्र के स्पन्दनों से। कोई पूछे इस भूतल पर पारिजात की मादक सुगन्ध लिये उस वालपुष्प के स्मित से, जो सहस्र-सहस्र महाकाव्यों की रचना का स्रोत है।

नीलम : मैं देख रही हूँ कि तुम भावनाओं के ज्वार में वही चली जा रही हो। आज तुम्हे हो क्या गया है ?

ललितांगी : पहले मेरे एक प्रश्न का उत्तर दे दो वहन नीलम, फिर मैं वताऊँगी। क्या यह सच है कि कभी-कभी अपना हृदय अपने साथ छल करता है ? वह अपने अधिकार से निकल चुकता है और हमें पता भी नहीं होता ? यह भी कैसा विधान है ?

नीलम : तो यह वात है !

ललितांगी : क्या वात है ?

नीलम : यही कि आपका हृदय आपके अधिकार से जाता रहा है। क्या मुझे उस भाग्यवान् का परिचय प्राप्त करने का सुयोग उपलब्ध होगा, जो आपके विशाल हृदय-सागर पर विजयी हुआ है ?

ललितांगी : क्या तुम कल न्यायालय में उपस्थित नहीं थीं ?

नीलम : मैं कुछ आवश्यक कार्यों में व्यस्त थी।

ललितांगी : तब तो बहन, तुम एक महत्त्वपूर्ण दृश्य के देखने से वंचित रह गयी। कभी-कभी जीवन मे ऐसी घटनाएँ घटती है, जो चेतना-उदधि की अगम गहराइयों में प्रवेश कर उसे मथ डालती हैं। शरीर के अणु-अणु में एक विचित्र-सी अनुभूति होने लगती है। हृदय का स्पन्दन बढ़ जाता है। मन विकल हो उठता है। विवेक थक जाता है। हृदय विजय-दुन्दुभि बजाने लगता है। जीवन में सत्य का आविर्भाव होता है। मन सौन्दर्य-लोक की सुषमा मे विभोर हो जाता है। कल्पना-कामिनी के इंगित पर वह रत्नाकर की लोल-लहरों, नील गगन की विहँसती किरणो और राका की मादक चन्द्रिका के साथ किलोलें करने लगता है। लगता है, जीवन में आनन्द का उदधि उमड़ा पड़ रहा है। मैं नहीं जानती थी कि सृष्टि में इतना सौन्दर्य और जीवन में इतना आनन्द छिपा पडा है। वह भी सूक्ष्म तानों के ताने-बाने से ही ढँका है, जो हृदय के प्रथम प्रकम्पन में ही टूट जाता है और दृष्टि के सामने आनन्द और सौन्दर्य का उदधि हिलोरें मारने लगता है।

नीलम : इस नयी कविता का कहीं अन्त भी है या नहीं ?

ललितांगी : नहीं, कभी नहीं। यह काव्य-धारा अनन्त, अनादि और शाश्वत है। सत्य का रूप, जीवन, सौन्दर्य और आनन्द का अक्षय स्रोत ! अहा ! उनके नयनों की गहराई मे वह क्या छिपा था, जो मुझे बरबस अपनी ओर खींच रहा था। उनके मुखमण्डल पर कैसा ओज देदीप्यमान हो रहा था। उसमे कैसा आकर्षण था ! सम्मोहन का जादू !

नीलम : लेकिन वह भाग्यवान् है कौन, जिसे सौन्दर्य और भावनाओं की देवी स्वतः ललितांगी ने अपनी हृदय-निधि समर्पित कर दी है !

ललितांगी : क्या अब भी नहीं समझी बहन नीलम ! ये वे ही सरदार बलबीर सिंह हैं, जिन्होंने कल अपनी ओजपूर्ण वाणी से न्यायालय को प्रकंपित कर दिया था।

नीलम : तो ये हैं।

(एक ओर से प्रियंवदा, अचला, कादम्बिनी आदि सहेलियों का आगमन और दूसरी ओर से बलबीर सिंह तथा सुरेन्द्र सिंह का आगमन)

बलबीर सिंह : (एक क्षण प्रियंवदा की ओर अपलक देखता है। फिर सँभलकर पूछता है, दूर की ओर इंगित करते हुए) क्या आप यह बताने का कष्ट करेंगी कि इन बाल-वृन्दों का अमूल्य समय, भला पौधों को जल से प्लावित करने में क्यों नष्ट किया जा रहा है ! क्या यहाँ इनकी शिक्षा की पूर्ण व्यवस्था नहीं है !

प्रियंवदा : इनकी शिक्षा की पूर्ण व्यवस्था है और ये जो कुछ कर रहे हैं, वह इनकी शिक्षा का प्रधान अंग है।

बलबीर सिंह : क्या तात्पर्य !

प्रियंवदा : यही कि बच्चों को दो घण्टे उत्पादन के किसी क्षेत्र में अपना श्रम लगाना अनिवार्य होता है। इसके उपलक्ष्य में उनसे शिक्षण-शुल्क नहीं लिया जाता।

बलबीर सिंह : फिर शालाओं को आर्थिक क्षति का सामना करना पड़ता होगा !

प्रियंवदा : नहीं; क्योंकि बच्चों द्वारा किये गये उत्पादन से इतनी अर्थ-प्राप्ति हो जाती है कि शालाओं का कार्य सुचारु रूप से संचालित हो जाता है। हमें नगर-कोष से इन शालाओं पर कुछ भी व्यय नहीं करना पड़ता।

बलवीर सिंह : फिर तो इन्हें शालाओं के स्थान पर उत्पादन-गृह नाम से सम्बुद्ध किया जाय, तो अधिक उत्तम होगा।

प्रियंवदा : नहीं। हमारी शिक्षा-प्रणाली एक आदर्श शिक्षा-प्रणाली है। श्रम के माध्यम से बच्चों के स्वस्थ व्यक्तित्व का विकास होता है। उनकी सृजन की प्रवृत्ति को पूर्ण विकसित होने का सुयोग प्राप्त होता है। हमारे यहाँ के बच्चे भविष्य मे समाज को आप लोगों जैसा विनाशकारी सहयोग न देकर रचनात्मक सहयोग देते हैं।

बलवीर सिंह : आप हमारी विचार-धारा का अपमान कर रही हैं।

प्रियंवदा : मैं समाज के लिए अहित विचारधारा का कभी भी समर्थन नहीं कर सकती।

बलवीर सिंह : यदि आप उसका समर्थन नहीं कर सकतीं, तो उसका अपमान भी नहीं करना चाहिए।

प्रियंवदा : विनाश के बीजों को पनपने से पहले ही नष्ट कर देना अधिक उत्तम होता है। कुष्ठ के ये कीटाणु ऐसा न हो कि हमारे यहाँ के स्वस्थ समाज को भी गलाना आरम्भ कर दें।

बलवीर सिंह : व्यक्ति को चाहिए कि वह जिस वस्तु की आलोचना करना चाहता है, उसके प्रत्येक पहलू पर समुचित ज्ञान प्राप्त कर ले।

प्रियंवदा : मैं इसकी आवश्यकता नहीं समझती। जिस कार्य के सम्पादन का साधन दूषित हो, उसका साध्य कभी भी मंगलमय नहीं हो सकता।

बलवीर सिंह : जिस विचारधारा के सम्बन्ध मे आपको पर्याप्त ज्ञान नहीं है, उसकी आलोचना में आप अपने सौन्दर्य के मद में पागल हो बेसुरा राग अलापे जा रही हैं।

प्रियंवदा : सौन्दर्य की बात करते हैं, तो सुन लीजिये। मैं समाज के हर असुन्दर कार्य और असुन्दर विचारधारा से घृणा करती हूँ।

बलवीर सिंह : आपको अपने सौन्दर्य का इतना मद है, तो सुन लीजिये, मैं आपको अपनी विचारधारा से प्रेम कराकर छोड़ूँगा।

प्रियंवदा : प्रेम और आपकी विचारधारा से ! पारिजात भी कभी क्या आरण्य वन में प्रस्फुटित हो सकता है ?

बलबीर सिंह : समय सब कुछ बता देगा। वह सबसे बड़ा न्यायाधीश है।

प्रियंवदा : सौन्दर्य और न्याय को अपने मुख से बार-बार उच्चारित कर उन्हें अपवित्र न करें, तो हम लोगों पर आपकी बड़ी कृपा होगी।

(ललितांगी को छोड़ सभी मुस्कराती हैं)

बलबीर सिंह : तो आप हमें इतना पतित समझती हैं ?

प्रियंवदा : यह तो हमने नहीं कहा है।

बलबीर सिंह : ठीक है। सुरेन्द्रसिंह ! चलो।

(बलबीर सिंह तथा सुरेन्द्रसिंह का प्रस्थान)

ललितांगी : (प्रियंवदा से) कुछ भी हो, तुम्हें उनका अपमान नहीं करना था। वे हमारे अतिथि हैं।

प्रियंवदा : हमें नहीं मालूम था कि तुम्हारे हृदय में उनके लिए इतनी सहानुभूति उत्पन्न हो चुकी है। अपराध के लिए क्षमा चाहती हूँ।

(हँसते हुए सबका प्रस्थान)

पटाक्षेप

षष्ठ दृश्य

[स्थान : उपवन। प्रियंवदा और मधुसूदन टहल रहे हैं।]

मधुसूदन : प्रिये, कभी-कभी तुम भावनाओं में बह जाती हो। तुम्हारी नारी-सुलभ कमजोरी अभी दूर नहीं हुई है। यह सच है कि हम बलबीर सिंह की विचारधारा से असहमत हैं। लेकिन तुम्हें उनका अपमान नहीं करना था। यह हमारे जीवन-दर्शन के विपरीत है।

प्रियंवदा : तो क्या यह सम्भव है कि मार्तण्ड अपनी ज्योति, सुधाकर

अपनी चन्द्रिका, अनल अपना ताप और मानिनी अपना मान त्याग सकती है ?

मधुसूदन : हर प्रकार के मान-अभिमान मे हमे ऊपर उठकर व्यवहार करना चाहिए। मनुष्य का अपना अहं ही उसका प्रधान शत्रु है। अह ही उसके विकास और मनुष्यत्व का सबसे वडा रोड़ा है। विश्व की सुख-शान्ति और मानवता की मंगल-कामना मे जितना रोड़ा इस अह ने डाला है, उतना प्रकृति या मनुष्य निर्मित कोई अन्य वस्तु नहीं डाल सकी है। दूसरी ओर आत्मा को वन्दी वना यह सदा प्रहरी वना रहता है। आत्मा के विकास का यह सबसे वडा शत्रु है। यह वडा स्वार्थी है। सदा अपने स्वार्थ में ही प्रवृत्त रहता है। जब हम अपनी अह की दीवाल लाँघने में समर्थ हो जाते हैं, तभी हम दूसरों के जीवन में प्रवेश पा सकते है। उन्हे अच्छी तरह समझकर उनसे यथोचित व्यवहार कर सकते हैं।

हर कलाकार अपनी आत्मा को वन्दी वनानेवाले अहं पर विजय प्राप्त कर अपनी आत्मा की निर्मल ज्योति को अपनी कृतियों में प्रतिविम्वित करता है। अतः हमारे लिए कभी भी अपने अह का क्रीतदास वनना उचित नहीं है प्रियवदे !

प्रियंवदा : मानिनी के मान का विश्लेषण करने मे आपने त्रुटि की है प्रियवर !

मधुसूदन : कैसे ?

प्रियंवदा : मानिनी के मान से मेरा तात्पर्य केवल उसके स्वाभिमान से था। जब तक तन है, 'स्व' का अस्तित्व हर प्राणी में रहेगा ही। हर प्राणी अपने 'स्व' की मर्यादा की रक्षा करता है। जिस समय मनुष्य का स्वाभिमान गलित हो जाता है, उस समय वह जीवन के श्रेय-मार्ग से भ्रष्ट हो जाता है; क्योंकि 'स्व' ही हर प्राणी की अपनी सत्ता है। 'स्व' को गलित या दमित कर नहीं, वल्कि विकसित करके ही प्राणी विश्वात्मा से तादात्म्य स्थापित करता है, जिसे वेद 'मोक्ष'

नाम से सम्बुद्ध करते है। लौकिक दृष्टि से 'स्व' का अस्तित्व सभी दर्शनों ने स्वीकार किया है। 'स्व' और 'अहं' मे तात्त्विक अन्तर है। 'स्व' की स्वार्थ-पूर्ति के लिए 'अहं' को प्रकृति ने निर्मित किया है। किन्तु 'अहं' 'स्व' को ढँक लेता है। अहं उच्छृंखल है। वह हर स्थान पर अपना अस्तित्व कायम करना चाहता है। इसलिए वह 'स्व' के विकास मे बाधक होता है। अतः मेरा तात्पर्य वहाँ अहं से न होकर 'स्व' से है और 'स्व' को गलित होने से बचाना हर प्राणी का अपना स्वधर्म है।

(सन्त करोड़ीमल तथा स्वामी महामूर्खानन्दजी का आगमन। दोनों आकर नगर-प्रधानजी को नमन करते हैं।)

मधुसूदन : कहिये, आनन्द से तो हैं आप लोग ?

स्वामी महामूर्खानन्द : स्वामी महामूर्खानन्द के नाम की महिमा ही कुछ ऐसी है कि आनन्द सदा उनका अनुचर बनकर रहने में ही अपने को धन्य समझता है।

संत करोड़ीमल : फिर की न ऊटपटाँग बात ! आधुनिक संत करोड़ीमल को सदा इसी बात का भय रहता है। 'यथा नाम तथा गुणः'।

स्वामी महामूर्खानन्द : (पश्चात्ताप के स्वर में) गुरुदेव ! आज कैसे बुद्धिहीन व्यक्ति से भेट हुई, जो हमारे नाम की अतुल महिमा से परिचित नहीं है।

संत करोड़ीमल : धन्य है महाराज ! आपने हमे बुद्धिहीन समझा। परन्तु हम तो बुद्धिमानों के सिरमौर हैं, सिरमौर ! देखिये, पहले हम आपकी समस्या को वैज्ञानिक ढंग से समझाते हैं। फिर उसका समाधान ढूँढ़ निकालेंगे।

स्वामी महामूर्खानन्द : मैं तो तंग आ गया हूँ इस वैज्ञानिक ढंग से। लोग कहते हैं, वैज्ञानिक ढंग से मुख-मंजन कीजिये, वैज्ञानिक ढग

से स्नान कीजिये, वैज्ञानिक ढंग से भोजन कीजिये, वैज्ञानिक ढंग से सोइये, यहाँ तक कि वैज्ञानिक ढंग से चलिये, फिरिये और सोचिये-समझिये। नाकों दम कर दिया है इस वैज्ञानिक ढंग ने। आज बुद्धिवादी व्यक्ति को जिस पुष्ट और तीक्ष्ण मस्तिष्क पर अहं है, वह विज्ञान का वेदाम गुलाम बन गया है। विज्ञान जीवन पर हावी हो गया है। विज्ञान ! विज्ञान ! विज्ञान ! लगता है, जीवन कुछ है ही नहीं।

प्रियंवदा : (मधुसूदन की ओर देखते हुए) स्वामी महामूर्खानन्दजी कभी-कभी बहुत तथ्यपूर्ण बात बोल जाते हैं।

मधुसूदन : वे भी तो एक विचारक ही हैं। उनके भी अपने विचार हैं।

संत करोड़ीमल : हमे प्रतीत होता है कि आप सभ्यता की दौड़ में बहुत पीछे रह गये हैं।

स्वामी महामूर्खानन्द : सत्य है, केवल सत्य ही नहीं, महासत्य है गुरुदेव ! (ऊपर देखकर हाथ जोड़ता है) यथार्थ में आज बुद्धिहीन व्यक्ति से भेट हुई है। जो हमारे नाम की महिमा नहीं समझ सका, भला वह हमारी योग्यता का मूल्य क्या आँकेगा ? लोग हमे आज के युग से दो हजार वर्ष आगे पहुँचा हुआ बताते हैं और एक यह अल्पबुद्धि, अर्धशिक्षित, अल्प-समझ, अर्ध-मनुष्य मिला, जो हमें आज के युग से पिछड़ा हुआ बतलाता है। हे गुरुदेव !

संत करोड़ीमल : सुनिये गुरुदेव के चेले ! आपको दो बातें सिद्ध करनी होंगी। प्रथम, आपके नाम की महिमा, जिसे न समझ सकने का बुद्धिमानों के सिरमौर पर अभियोग है। द्वितीय, आपको यह प्रमाणित करना होगा कि आप आधुनिक युग से दो हजार वर्ष आगे है। हमें आशा है, हमारी बात आपकी समझ में आ चुकी होगी; क्योंकि हमने अपनी बात आपको वैज्ञानिक ढग से समझायी है।

स्वामी महामूर्खानन्द : आज के युग में जो व्यक्ति छोटा नाम रखता है और सादगी दिखाता है कि वह महान् समझा जाने लगता है।

आज के युग का फैशन 'बनावट' है। लड़को मे बनावट, लडकियों में बनावट, साधुओं में बनावट, नेताओं में बनावट। बस बनावट-ही-बनावट। कुछ ऊटपटाग नाम रख लीजिये, हृदय मे चाहे घृणा-ही-घृणा भरी हो, परन्तु शब्दों मे प्रेम, दया, करुणा और विश्वप्रेम के नारे हों। अपने-आपको सहनशील और छोटा प्रकट कीजिये। बस, आप पहुँचे हुए पुरुष हो जायेगे। बस, यही हमे भी समझ लीजिये।

प्रियंवदा : (मधुसूदन की ओर देखते हुए) सच है। छल-कपट हमारे जीवन में इतनी गहराई तक उतर गया है कि हम यथार्थ जीवन को भूल ही गये हैं।

सन्त करोड़ीमल : अच्छा, अब आप दूसरी बात सिद्ध कीजिये।

स्वामी महामूर्खानन्द : जिस समस्या का समाधान बुद्धि के लिए दुस्तर होता है, उसे हृदय सहज ही खोज लेते हैं।

सन्त करोड़ीमल : कैसे ?

स्वामी महामूर्खानन्द : आप विवाहित हैं या अविवाहित ?

सन्त करोड़ीमल : विवाहित।

स्वामी महामूर्खानन्द : क्या आपकी पत्नी कभी कोई हठ किया करती है ?

सन्त करोड़ीमल : हाँ। अवश्य करती है। लेकिन आपको इससे क्या प्रयोजन ?

स्वामी महामूर्खानन्द : मत घबड़ाइये। जब वह यह समझाने में असमर्थ होती है कि उसका हठ न्यायसगत है, तब वह क्या करती है ?

सन्त करोड़ीमल : रोने लगती है और क्या करती है ?

स्वामी महामूर्खानन्द : फिर आप मान जाते हैं ?

सन्त करोड़ीमल : मानना ही पड़ता है।

स्वामी महामूर्खानन्द : परन्तु प्रश्न उठता है कि आपकी पत्नी रोने क्यों लगती है ?

सन्त करोड़ीमल : हमारे समीप इस प्रकार की अर्थहीन बात समझने का समय नहीं रहता।

स्वामी महामूर्खानन्द : समय नहीं रहता या अनादि शक्ति ने बुद्धि ही नहीं दी।

सन्त करोड़ीमल : आप अपना तात्पर्य स्पष्ट कीजिये।

स्वामी महामूर्खानन्द : स्पष्ट करने की अब आवश्यकता ही क्या है। स्पष्ट तो हो ही गया। अरे! जब नारी की बुद्धि थकित हो गयी, तब वह हृदय से काम लेने लगी।

संत करोड़ीमल : लेकिन इससे आपका दो हजार वर्ष पूर्व होने से क्या तात्पर्य है?

स्वामी महामूर्खानन्द : नहीं समझे। फिर भी नहीं समझे। हे गुरुदेव! कैसे बुद्धिहीन व्यक्ति से पाला पड़ा है। बात स्पष्ट है और फिर भी नहीं समझे। तुम हर बात 'वैज्ञानिक ढंग' से समझते हो न?

संत करोड़ीमल : हाँ। लेकिन इससे क्या?

स्वामी महामूर्खानन्द : घबड़ाओ नहीं। सिर्फ उत्तर देते जाओ। 'वैज्ञानिक ढग' किसकी देन है?

संत करोड़ीमल : विज्ञान की।

स्वामी महामूर्खानन्द : और विज्ञान?

संत करोड़ीमल : हमें नहीं मालूम।

स्वामी महामूर्खानन्द : अच्छा, तो हम बतलाते हैं। विज्ञान बुद्धि का पुत्र है। और रोना क्या है?

संत करोड़ीमल : एक भाव है।

स्वामी महामूर्खानन्द : भावनाएँ किसकी देन हैं?

संत करोड़ीमल : हमें ये सब निरर्थक बाते मालूम नहीं हैं।

स्वामी महामूर्खानन्द : भला मोटी बुद्धिवालों को ये सब बाते कैसे मालूम हो सकती हैं! लीजिये, स्वामीजी स्वतः बताते हैं। भावनाएँ हृदय की देन हैं।

संत करोड़ीमल : इन सब बकवासों का अर्थ ?

स्वामी महामूर्खानन्द : इन सब बातों का निष्कर्ष निकला कि जो समस्याएँ बुद्धि (विज्ञान) से नहीं सुलझायी जा सकतीं, वे हृदय (भाव) के द्वारा बहुत ही आसानी से सुलझायी जा सकती हैं। मैं भावनाओं द्वारा ही सभी समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करता हूँ।

संत करोड़ीमल : तो आप सभी समस्याओं को रोकर सुलझाते हैं ? यदि ऐसा ही है, तो अभी आप क्यों नहीं रोये ?

स्वामी महामूर्खानन्द : हे गुरुदेव ! (ऊपर देखता है) आपने तो मुझे विश्व की सम्पूर्ण समस्याओं को हल करने की कुंजी दे दी, परन्तु बुद्धिहीन व्यक्ति को समझाने की कुजी नहीं दी। मैं अभी आपके पास पुनः दीक्षित होने आ रहा हूँ।

(जाने के लिए उद्यत होता है)

संत करोड़ीमल : आप जा रहे है। इसका अर्थ यह हुआ कि आपने अपनी हार स्वीकार कर ली ?

स्वामी महामूर्खानन्द : (बैठकर) स्वामी महामूर्खानन्द जीवन में न कभी हारे और न कभी हारेंगे। तो आपका प्रश्न है कि क्या मै रोकर समस्याएँ हल करता हूँ, तो उत्तर है, नहीं।

संत करोड़ीमल : तो फिर कैसे ?

स्वामी महामूर्खानन्द : भावों के द्वारा।

संत करोड़ीमल : उदाहरण ?

स्वामी महामूर्खानन्द : प्रेम, करुणा, सेवा, त्याग और विनय, इन पाँच अमोघ अस्त्रों से दुनिया की सारी समस्याएँ हल की जा सकती हैं।

संत करोड़ीमल : हम आपके अमोघ अस्त्रों को वैज्ञानिक ढंग से समझना पसन्द करेंगे।

स्वामी महामूर्खानन्द : जब आपकी पत्नी सत्तर रुपये मूल्य की साड़ी

खरीदने के लिए आपको राजी नहीं कर पाती, तब वह आपके ऊपर दो अमोघ अस्त्रों का प्रयोग करती है। वे है, प्रेम और विनय। प्रेम द्वारा आपको प्रसन्न करके या विनय दिखाकर अर्थात् रोकर आपके वज्र जैसे हृदय को पिघला देती है।

संत करोड़ीमल : अक्षरतः सत्य।

स्वामी महामूर्खानन्द : स्वामी महामूर्खानन्द कभी झूठ नहीं बोला करते।

संत करोड़ीमल : प्रेम और रोने की बात तो हमें पहले से ही मालूम थी। आपने कोई नयी बात नहीं बतलायी। अब आप करुणा, सेवा और त्याग पर विचार प्रकट कीजिये।

स्वामी महामूर्खानन्द : जब आप अपनी पत्नी को डंडे से मारते हैं, तब वह करुणा की मूर्ति बनी, आपकी दुष्टता का बिना विरोध किये, अपनी महान् करुणा से आपको क्षमा कर समस्या का समाधान प्रस्तुत कर देती है।

संत करोड़ीमल : अक्षरशः सत्य।

स्वामी महामूर्खानन्द : और आगे सुनिये। आपकी पत्नी सेवा करके आपके कटु, निम्न, दुष्ट और स्वार्थी विचारों को उभड़ने नहीं देती और त्याग की तो वह मूर्ति ही है। अपना सर्वस्व त्याग करके, अपनी त्याग की शक्ति पर ही वह तुम जैसे पशु को अपने अधीन कर जीवन में सुख और शान्ति स्थापित करती है। अगर वह ऐसा न करे, तो तुम जैसे नीच व्यक्ति दूसरे दिन ही उसे तलाक दे उसके जीवन को नष्ट कर सकते हैं।

संत करोड़ीमल : सुन्दर! भयंकर सुन्दर! लेकिन इससे कैसे सिद्ध हुआ कि आप दो हजार वर्ष आगे हैं।

स्वामी महामूर्खानन्द : मै जिस विधि से आज जीवन-यापन करता हूँ, उस विधि का अनुगमन जन-साधारण आज से दो हजार वर्ष बाद कर सकेगा, अर्थात् आज का भौतिकवादी व्यक्ति जिसने विज्ञान के

हाथ अपने जीवन को बेच दिया, जो यह समझता है कि विज्ञान हर समस्या के समाधान के लिए रामवाण औषधि है, वह आज से दो हजार वर्ष बाद विज्ञान की कटुता और असमर्थताओं से पूर्ण परिचित हो भाव-जगत् की ओर लौटेगा और अपने खोये हुए आनन्द के उदधि में फिर गोते लगाने लगेगा। मनुष्य मशीन से फिर मनुष्य बन जायगा।

संत करोड़ीमल : बहुत अच्छे ! बहुत अच्छे !

स्वामी महामूर्खानन्द : मुझे आपकी प्रशंसा की आवश्यकता नहीं है। बुद्धिहीन व्यक्ति का साथ होने से मैं अपना प्रधान कार्य तो भूल ही गया। हाँ, तो नगर-प्रधानजी ! मैंने सुना है, आप सर्वोदय के प्रचारार्थ समीपवर्ती ग्रामो को शीघ्र ही प्रस्थान करनेवाले हैं।

मधुसूदन : हाँ, स्वामीजी ! मैं शीघ्र ही जा रहा हूँ।

स्वामी महामूर्खानन्द : तो मेरी एक छोटी-सी विनय स्वीकृत कर लीजिये। मुझे भी अपने साथ ले लें, तो उत्तम होगा। जब आप और देवी प्रियंवदा भी जा रही हैं, तो मैं ही यहाँ रहकर क्या करूँगा।

मधुसूदन : प्रियंवदा नहीं जा रही हैं। यदि आप इनके पास ही रहें, तो अच्छा होगा।

स्वामी महामूर्खानन्द : यदि देवी प्रियवदा आपके साथ नहीं जा रही हैं, तो फिर मेरा जाना आपके साथ भला कैसे हो सकता है। करुणा, त्याग और सेवा की देवी की सेवा तथा सत्संग छोड़कर भला कौन मूर्ख यहाँ-वहाँ भटकता फिरेगा। स्वामी महामूर्खानन्द अब प्रस्थान करेंगे।

(सभी हँसते हुए प्रस्थान करते हैं)

पटाक्षेप

सप्तम दृश्य

[स्थान : बलवीर सिंह का निवासस्थान। बलवीर सिंह तथा सुरेन्द्र सिंह वार्तालाप कर रहे हैं।]

बलवीर सिंह : तो सुरेन्द्र सिंह, तुमने प्रियंवदा के बारे में क्या-क्या जानकारी हासिल की है ?

सुरेन्द्र सिंह : सबसे महत्त्वपूर्ण सूचना यह है कि प्रियंवदा अपने प्रकोष्ठ में अकेली ही शयन करती है। प्रकोष्ठ के पीछे की ओर एक खिड़की है, जिसके काँच तोडकर सरलता से भीतर प्रवेश किया जा सकता है।

बलवीर सिंह : और कुछ ?

सुरेन्द्र सिंह : प्रियंवदा के माता-पिता जीवित नहीं हैं। वे काष्ठ सामग्री-उत्पादन विभाग की प्रधान हैं। उनका तथा मधुसूदन का विवाह-सम्बन्ध निकट भविष्य में ही सम्पन्न होनेवाला है।

बलवीर सिंह : यह कभी सम्भव नहीं हो सकता। प्रियंवदा का मादक सौन्दर्य जब से देखा, तभी से वह मेरे हृदय को बेध रहा है। दल के लोगों से भेंट की थी क्या सुरेन्द्र सिंह ?

सुरेन्द्र सिंह : छोटे सरदार सम्पतलाल मिले थे !

बलवीर सिंह : कितने घोड़े लाने को कहा है तुमने ?

सुरेन्द्र सिंह : पाँच।

बलवीर सिंह : उन्हें कहाँ ठहरने को कहा है ?

सुरेन्द्र सिंह : नर्मदा के उत्तरी किनारे के वन-प्रदेश में।

बलवीर सिंह : नगर-कोष की देख-रेख के लिए रात्रि में वहाँ कितने रक्षक रहते हैं ?

सुरेन्द्र सिंह : सिर्फ दो।

बलवीर सिंह : फिर तो पाँच व्यक्ति ही पर्याप्त होंगे। लेकिन सुरेन्द्र सिंह...।

सुरेन्द्र सिंह : आज्ञा, बड़े सरदार !

बलबीर सिंह : सुरेन्द्र सिंह ! मेरा हृदय न मालूम क्यों बैठा जा रहा है। कुछ बात समझ में नहीं आ रही है।

सुरेन्द्र सिंह : आपका स्वास्थ्य तो ठीक है न सरदार ? रात्रि तो ठीक तरह से व्यतीत हुई है न ?

बलबीर सिंह : नहीं, रात्रि में मैं सो नहीं सका हूँ।

सुरेन्द्र सिंह : मै सब कुछ समझ गया सरदार !

बलबीर सिंह : क्या समझा ?

सुरेन्द्र सिंह : कि आपका हृदय...।

बलबीर सिंह : नहीं। यह कारण नहीं है। सुरेन्द्र सिंह ! तुम आठ वर्षों से मेरे साथ रहकर भी मुझे नही समझ सके। तुम्हारे सरदार का हृदय कभी भी हाथ से नहीं निकला। वह कभी किसी नारी के लिए नहीं छटपटाया। नारी तो केवल इन्द्रिय-तृप्ति का साधनमात्र है। वह हमारा सर्वस्व कभी नहीं हो सकती।

सुरेन्द्र सिंह : तो फिर आपकी व्याकुलता का कारण ?

बलबीर सिंह : वही तो मैं सोच रहा हूँ। बड़े-बड़े संगीन डाकों मे जिसके चेहरे पर एक शिकन भी नहीं आयी, उसका हृदय एक साधारण-से कार्य के कारण क्यों बेचैन है ?

सुरेन्द्र सिंह : शायद आपको अपने प्रिय पिता समर सिंह की याद आ गयी हो।

बलबीर सिंह : नहीं, यह सब कुछ नहीं है। फिर भी कुछ है, जो मेरे चित्त को बेचैन कर रहा है। शान्ति नहीं लेने देता। अच्छा सुरेन्द्र सिंह ! अब तुम जाओ। मुझे शान्ति चाहिए।

(सुरेन्द्र सिंह का प्रस्थान)

पटाक्षेप

द्वितीय अंक

प्रथम दृश्य

[मधुसूदन और कोकिला आदि बैलगाड़ी में चले जा रहे हैं। एक छोटे-से गाँव में से गाड़ी जा रही है। एक नारी अपने बच्चे को मार रही है।]

मधुसूदन : सुरेश, गाड़ी रोको। (गाड़ी से उतरकर मधुसूदन ग्रामीण नारी के समीप जाकर) क्यों बहन, क्यों मार रही हो इस बच्चे को ?

ग्रामीण नारी : क्या करेंगे जानकर बाबूजी ! यह तो हम गरीबों का रोना है। ईश्वर ने हमारे भाग्य में रोना ही लिखकर भेजा है, सो रो रहे हैं।

मधुसूदन : क्या एक भाई को अपनी दुखियारी बहन का दुख जानने का कोई अधिकार नहीं है ?

ग्रामीण नारी : तुमने मुझे बहन कहकर मेरे भाई की याद दिला दी। (उदास हो जाती है) न मालूम वह कहाँ होगा।

मधुसूदन : क्या तुम्हारा भाई कहीं गया है ?

ग्रामीण नारी : हाँ, गया है बहुत दूर।

मधुसूदन : (बच्चे की पीठ सहलाते हुए) क्यो बेटा ! तुम्हारा क्या नाम है ?

बालक : रामू।

मधुसूदन : तुम्हारे पिताजी कहाँ हैं ?

बालक : हमें नहीं मालूम।

मधुसूदन : क्यों बहन, इसके पिताजी कहाँ हैं ?

ग्रामीण नारी : वे भी वीरन के साथ परदेश गये हैं।

मधुसूदन : किसलिए गये है बहन ?

ग्रामीण नारी : रोटी कमाने को।

मधुसूदन : कितने दिनों से उनकी खबर नही मिली ?

ग्रामीण नारी : जब से गये हैं, तभी से कोई खबर नहीं मिली। करीब छह वर्ष हो गये होंगे। रामू उस समय खिसकता भर था। पता नहीं, कैसे होंगे। (आँसू पोछने लगती है)

मधुसूदन : मत रो बहन। इन रोटियों के दो टुकड़ों ने न मालूम कितनी बहनों को उनके भाई से जुदा किया होगा। न मालूम कितनी पत्नियों को उनके पति से और लाखों माताओं को उनके पुत्रों से। मत रो बहन, मत रो। यही तो संसार के दुर्भाग्य की कहानी है। (आँसू पोछते हैं)

ग्रामीण नारी : यह क्या बाबू ! आपकी आँखों मे आँसू ! नहीं-नहीं। आप हम लोगो के दुख से दुखी मत होइये। इस दुःख की मार को हम लोग सह लेंगी, पर आप सह न सकेंगे।

मधुसूदन : नहीं बहन, यह बात नहीं है। मैंने इस असहाय हृदय को हजार बार मना किया, परन्तु यह भर ही आता है। बरबस आँखो में आँसू छलक पड़ते है। मैं आँसुओं को रोकता हूँ कि मुझे यह दिखावा पसद नहीं, परन्तु वे रोके नहीं रुकते। क्यो रामू, तू क्यों रो रहा था ?

बालक : माँ ने मारा था।

मधुसूदन : माँने क्यों मारा था ?

बालक : मैंने दूध पी लिया था।

मधुसूदन : तो इसमें मारने की कौन-सी बात थी ?

ग्रामीण नारी : (नीचे की ओर दृष्टि किये ओंठ दबाते हुए) मैं गाय के आधा सेर दूध को बाजार बेचने ले जानेवाली थी। और उन पैसों से आज के लिए आटा लाती ! पर············(आँखों से आँसू पोछने लगती है)।

मधुसूदन : बस बहन, बस ! अब मुझसे आगे नहीं सुना जाता ।

बालक : मुझे भूख लगी थी, तो मैंने दूध पी लिया और माँ मुझको मारती है ।

मधुसूदन : कितना दुर्भाग्य है ! माँ को बच्चे के मुँह से दूध छुड़ाना पड़ता है । गरीबी ! तू अब और कितना कठोर बनायेगी ?

कोकिला : बहन, लो ये तीस रुपये । एक बकरी खरीद लेना और उसका दूध रामू को पिलाना ।

ग्रामीण नारी : नहीं बहन, मैं रुपये नहीं लूँगी ।

कोकिला : मैं भी आखिर तुम्हारी बहन ही तो हूँ । हमारे रुपये तैसे तुम्हारे रुपये । रामू को तुम अवश्य पढ़ाना बहन !

ग्रामीण नारी : गरीबों को पढ़ना कहाँ नसीब ! उन्हें जिन्दा रहने को रोटी के दो टुकड़े मिल जायँ तो बहुत है । मै अपने साथ इसे घास काटने ले जाती हूँ । सोचती हूँ , घास काटना सीख जायगा, तो आने-दो आने मिल ही जाया करेंगे ।

कोकिला : लो बहन, ये रुपये ले लो । ईश्वर के लिए इनकार मत करो । (सहसा चौंककर) बाजू की झोपड़ी से किसीके सिसकने की आवाज आ रही है क्या ?

ग्रामीण नारी : गरीबों का रोना और सिसकना ही तो जीवन है बहन ।

कोकिला : उसे बाहर बुलाओ न ।

ग्रामीण नारी : वह बाहर नहीं आयेगी बहन ।

कोकिला : यदि वह बाहर नहीं आ सकती, तो मैं खुद ही भीतर जाकर देख लेती हूँ ।

(भीतर जाकर देखती है । पयाल पर एक तेरह-चौदह वर्ष की लड़की पडी रो रही है । ग्रामीण नारी भी भीतर चली गयी ।)

कोकिला : क्यों बेटी ! क्यों रो रही है ? अरे यह क्या, तू तो एक जरा-

सा कपड़ा ही कमर में लपेटे है। कहॉ है तेरी धोती ? ला, मै तुझे पहना देती हूँ।

ग्रामीण नारी : धोती ही होती बहन, तो यह सब क्यों होता ?

कोकिला : (सिर थामते हुए) क्या ! इसे पहनने को एक धोती भी नही है। कल्पनातीत ! ओफ !

ग्रामीण नारी : हाँ बहन, यह देखो तो लकड़ी का निशान, अभी तक बना है। हड्डी के शरीर मे से भला यह खून कहॉ से आ गया है ?

कोकिला : यह निशान क्यों है ?

ग्रामीण नारी : यहाँ बच्चों के तन को निशान बना-बनाकर ही गढ़ा जाता है बहन। आप लोग क्या जानें यह सब। बताते हुए हमें खुद लज्जा आती है। आप सोचेंगी, यहॉ के मॉ-बापों के पास हृदय नहीं होता। लेकिन भाग्य मे लिखी गरीबी जब मॉ-बाप बनने दे, तब न ! मैं तो कहती हूँ बहन, गरीबो को मॉ-बाप नही बनना चाहिए। लेकिन क्या करें ?

कोकिला : ऐसा न कहो बहन, यह तो बताओ, यह निशान कहाँ से आया ?

ग्रामीण नारी : इसके पास धोती नहीं थी। ये जो भिंडी के चार पेड़ देख रही हैं न बहन !

कोकिला : हॉ।

ग्रामीण नारी : इन्हें इसके बाप ने रखाया था कि इनकी भिंडी की बिक्री से मिले रुपयों से इसके लिए धोती ला देगा। परन्तु...।

कोकिला : क्यों ? रुक क्यो गयी ? हॉ, तो फिर ?

ग्रामीण नारी : यह लड़की रात में उठकर भिंडी से अपनी भूख मिटाती रही। कल रात मे इसके बाप ने देख लिया और क्रोध में आकर इसे मार दिया।

कोकिला : एक ओर भूख और भोजन का संघर्ष चल रहा है। दूसरी ओर बच्चे खाकर जीवित रहना चाहते है, तो उनके माता-पिता

अधपेट भोजन देकर ही उन्हे जीवित रखने को वेबस हैं। यह भी कितना करुण संघर्ष है। माता-पिता भोजन छिपाते है और बच्चे भोजन के लिए संघर्ष करते हैं। पक्षियों के बच्चों से भी असहाय, बेबस और दुखी ये मानव के बच्चे !

मधुसूदन : (दरवाजे पर रुकते हुए) कोकिला !

कोकिला : जी।

मधुसूदन : लो यह धोती। पहना दो उसे।

कोकिला : तो आप सब सुनते रहे हैं।

मधुसूदन : हॉ, मैं सब सुनता रहा हूँ। हमारे देश मे इतनी गरीबी है, जिसकी हम कल्पना तक नहीं कर सकते। और देखो ! मैं सोचता हूँ कि हरिदयाल इसी गॉव में रहकर कुछ इनकी सहायता करे। शहरवालो की अपेक्षा इन गॉववालों को हमारी अधिक आवश्य-कता है हरिदयाल !

हरिदयाल : जी !

मधुसूदन : तुम यहीं ठहरकर इन ग्रामीणों की सेवा करो। इन्हें तुम्हारी सेवा की आवश्यकता है। अपना आवश्यक सामान उतार लो।

(हरिदयाल सामान उतारता है। कोकिला धोती पहनाकर बालिका को मधुसूदन के पास लाती है।)

मधुसूदन : यही है वह वीर-हृदया, जो सर्वभक्षिणी-डाकिनी दरिद्रता से निरन्तर संघर्ष करके भी अभी जीवित है ?

कोकिला : जी !

मधुसूदन : यह कृश-गात्र, अस्थियों का कंकाल, धॅसी रंगहीन ऑखे, हड्डियों से चिपटी चमड़ी ! इनके लिए कुछ करो कोकिला। इनके लिए···। यह सब मुझसे देखा नहीं जाता।

कोकिला : चलिये, चला जाय।

(मधुसूदन और कोकिला जाकर गाड़ी में बैठते हैं। हरिदयाल आकर मधुसूदन के चरण स्पर्श करता है।)

मधुसूदन : आनन्दित रहो। यह याद रखना हरिदयाल, ये ग्रामीण तुम्हारे अपने भाई-बहन हैं। ये बहुत दुखी हैं। सच्चे हृदय से सेवा करना। सेवा से ही आत्मा को सन्तोष मिलता है। अगर तुमने अदृश्य शक्ति के इन खिलौनों को नष्ट होने से बचा लिया, तो यह तुम्हारी उसकी सच्ची उपासना होगी। सुरेश, चलो।

पटाक्षेप

द्वितीय दृश्य

[स्थान : सिरोही के एक सदन का प्रांगण। मधुसूदन के साथ कुछ व्यक्ति बैठे हुए वार्तालाप कर रहे हैं।]

नरेन्द्र : हमारे नगर से पाँच आदमियों का एक दल सर्वोदयपुरी गया था। उसने आकर जो बताया, उसे सुनकर सभी नगरवासी आश्चर्य-चकित रह गये हैं।

मधुसूदन : क्या कहा उन्होंने ?

नरेन्द्र : उन्होंने कहा कि सर्वोदयपुरी पृथ्वी का स्वर्ग है। भौतिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्रों मे उन्नति कर नागरिकों के जीवन में आनन्द को घोल दिया है। नर्मदा-घाटी बाँध उनके श्रम की ध्वजा फहरा रहा है। कृषि और उद्योगों की बहुमुखी उन्नति हुई है। आज सर्वोदय-पुरी की वस्तुएँ देश के प्रायः सभी प्रमुख नगरों में बिकती हैं। सहकारिता का ऐसा उदाहरण इतिहास ने कभी नहीं देखा। कला, संगीत और संस्कृति से सम्बद्ध उनकी उपलब्धियाँ अवर्णनीय हैं। पुस्तकों में पढा था कि जीवन एक कला है। सर्वोदयपुरी मे इसकी यथार्थता देखी ! सर्वोदयपुरी के अणु-अणु से जीवन प्रस्फुटित हो रहा

था। हर छोटी और बड़ी प्रेम और आनन्द से लबालब भरी गागर हम अकिंचनों पर प्रेम और आनन्द को छलका जाती थी। परन्तु हम अभागों के पास उस अपरिमित प्रेम और आनन्द को रखने के योग्य पात्र कहाँ से आता ?

मधुसूदन : प्रेम, करुणा, सेवा, त्याग और विजय की नींव पर बनाया गया जीवन-निकेत सदा सभी को आनन्द ही देता है। (बाहर शोर-गुल सुनाई देता है) कोकिला ! देखो तो, यह कैसा शोर-गुल सुनाई दे रहा है।

(कोकिला बाहर जाकर देखती है, तो जनसागर हाथों में हृदय के प्रसून लिए उमड़ा पड़ रहा है। 'कर्मवीर मधुसूदन की जय' के नारों से दिग्-दिगन्तों को आन्दोलित कर रहा था। कोकिला लौटकर आती है।)

कोकिला : प्रधानजी के दर्शनो के लिए जनता आतुर हो रही है।

मधुसूदन : चलो कोकिला।

(सभी बाहर निकलकर आते है। उन पर पुष्पाहार और प्रसूनों की वर्षा होती है।)

मधुसूदन : (हाथ जोड़ते हुए) आप लोगों का स्वागत है। सुरेश ! आप लोगों के बैठने का प्रबन्ध करो।

महेशचंद्र : पृथ्वी के स्वर्ग सर्वोदयपुरी के प्रधान, कर्मवीर मधुसूदनजी का स्वागत करते हुए आज सिरोही के नागरिक अपने को धन्य मानते है। जिसने कर्म की भट्टी मे बुद्धि को खौलाकर उसका तत्त्व ग्रहण किया, जिसने निरंतर साधना में तल्लीन रह जीवन को सँवारा, जिसने विश्व के कल्याण के लिए अपने सुखों का बलिदान किया, जिसके तन के रोम-रोम में दुःखी मानवता के लिए अपार करुणा छिपी है, उस महापुरुष के चरणों में हम अपनी श्रद्धा के पुष्प अर्पित करते है।

मधुसूदन : आपने मुझे 'कर्मवीर' शब्द से सम्बुद्ध किया है। यह तो

कर्मवीर महात्मा गांधी और कर्म के निरन्तर साधक सन्त विनोबा को ही शोभा देता है। इन कर्मवीरों ने ही तो मेरे हृदय मे प्रेरणा उत्पन्न की है। आज भारत का कौन सुसभ्य नागरिक होगा, जो सन्त विनोबा द्वारा चलाये गये ,पवित्र यज्ञ से अपरिचित हो। उस सन्त-शिरोमणि ने कन्याकुमारी से कश्मीर तक, खम्भात की खाडी से गंगा के मुहाने तक पैदल चलकर जन-जन तक सर्वोदय के महान् सन्देश को पहुँचाया है। अब हमारा और आपका कार्य उस महान् सन्देश को कार्यरूप में परिणत करना है। अब आप लोग आराम से बैठ जायँ, तो उत्तम होगा।

(सभी बैठ जाते हैं। महेशचन्द्र उठकर बोलते हैं)

महेशचन्द्र : आप सर्वोदय और सर्वोदयपुरी पर कुछ प्रकाश डाले, तो हम लोगों पर बडी कृपा होगी; क्योंकि सर्वोदयपुरी ने हमें अत्यधिक प्रभावित किया है। दूसरों के विचारों को परिवर्तित एवं प्रभावित करने में धर्म की शक्ति भाषण से करोडगुनी अधिक है! सर्वोदयपुरी ने कोटि-कोटि मानस मे सर्वोदय की सफलता के प्रति उठनेवाली दुविधा का समाधान कर दिया है। विश्व-जन-मानस की चेतना को अपनी भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति से आलोडित कर दिया है। तर्क एवं बुद्धि के लिए जो कार्य दुःसाध्य ही नहीं, असम्भव था, उसे कर्म ने सहज ही कर दिखाया है। (बैठ जाते हैं)

मधुसूदन : (उठकर) सर्वोदयपुरी के प्रति आप लोगों के हृदय मे सहज उत्साह और जिज्ञासा देखकर हमे यह अनुभव हो रहा है कि सर्वोदय-पुरी के नागरिकों का श्रम सफल हो गया है। लगता है, उन्होंने अपने अवर्णनीय, सतत परिश्रम और विवेक से सम्पूर्ण विश्व की चेतना का प्रेरणा-स्थल बनने का सौभाग्य प्राप्त कर लिया है। आज विज्ञान ने धर्म की मान्यताओं को झकझोर दिया है। पाप और पुण्य की परिभाषाएँ आज हास्य की कहानी बनकर रह गयी हैं। आचार-

संहिता के अभाव मे समाज का जीवन विशृंखल हो गया है। छल-कपट जीवन के अंग बन जाने से उसमे अशान्ति उत्पन्न हो गयी है। विज्ञान की भौतिक उपलब्धियों की चकाचौध मे समाज अपने विवेक को खो, सृष्टि में निहित शाश्वत तत्त्व को भूल, विज्ञान की आधारशिला 'पदार्थ' को ही अन्तिम सत्ता के रूप में जाने या अजाने व्यवहार में मान्यता देने लगा है। अतः आज एक ऐसे तर्कसगत तात्त्विक जीवन-दर्शन की आवश्यकता है, जो समाज का निर्देशन कर उसके व्यवहार का मूल्याकन कर सके। आत्मा का विश्वात्मा से तादात्म्य ही जीवन का श्रेय है। आत्मा को प्रेम, त्याग, सेवा, करुणा और विश्वमैत्री की महती भावनाओं द्वारा ही विकसित कर जीवन के चरम लक्ष्य प्राप्त किये जा सकते है। इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए विश्वमंगल की भावना एव आध्यात्मिक विकास के समन्वय का नाम ही 'सर्वोदय' है। सर्वोदय कोई वाद या सिद्धान्त नहीं है। यह तो जीवन-दर्शन है। क्योंकि हर 'वाद' का कोई न कोई 'प्रतिवाद' होता है, परन्तु सर्वोदय का कोई प्रतिवाद नहीं है। 'सर्वोदय' सभी का उदय अर्थात् उन्नति चाहता है। यही वह मापदंड है, जिससे हम अपने कार्यों का मूल्यांकन कर अपने आचार को सतुलित कर सकते हैं। यदि हमारा कोई कार्य हमारे में निहित 'सर्वोदय' जीवन-मूल्य (Value) से असंगत है, तो वह आचार-सगत नहीं है। 'सर्वोदय' में विश्वमगल एवं आध्यात्मिकता का सुन्दर समन्वय है। जब व्यक्ति दूसरों के मगल के लिए कार्यशील हो उठता है, तब उसका अर्थ यह होता है कि वह अपने स्वार्थ और अहं के बन्धन को तोड़ अध्यात्म के क्षेत्र में प्रवेश कर चुका है, जहाँ समता, प्रेम और सौन्दर्य का सागर हिलोरे मार रहा है। 'सर्वोदय' की भावना से प्रेरित विश्वमंगल के लिए किया गया कार्य तो उत्तम होता ही है, साथ ही सर्वोदय की भावना हमारे आध्यात्मिक क्षेत्र को अधिकाधिक विकसित कर विश्वात्मा के

तादात्म्य के पथ पर हमें निरन्तर अग्रसर करती है। दूसरों की भलाई के लिए किये गये कार्यों मे हमारी आध्यात्मिक उन्नति निहित रहती है। मानव का प्रत्येक कार्य उसकी आध्यात्मिकता पर अपना प्रभाव विना डाले नहीं रहता। प्रभाव, कुप्रभाव भी हो सकता है और सुप्रभाव भी। सर्वोदयपुरी का नागरिक विश्वमंगल की भावना के माध्यम से अध्यात्मिक क्षेत्र मे निरन्तर अग्रसर हो रहा है। 'जीवन एक कला है', इस युक्ति को सही अर्थों में अपने जीवन मे उसने चरितार्थ किया है। उसने शुचि, सौन्दर्ययुक्त एवं कलात्मक जीवन-यापन आरम्भ किया है। सर्वोदयपुरी का लौकिक एवं आध्यात्मिक, दोनों पक्षों का सुन्दर विकास हुआ है, जिससे आप लोग अवगत हैं ही। हमने जीवन की हर आवश्यकता की पूर्ति कर ली है। आवास, भोजन और वस्त्र सभी को सुलभ हैं। हमने नागरिकों की 'कल की चिन्ता' समाप्त कर दी है। सर्वोदयपुरी का नागरिक ऑख खुलने से ऑख मूंदने तक 'रोटी' के चक्कर मे नहीं दौड़ता-फिरता। हमने सर्वोदयपुरी के नागरिको को 'रोटी' के हाथ वेचे गये उनके जीवन को वापस लौटा दिया। अर्थात् उनका जीवन रोटी की दासता से मुक्त हो गया है। मानव को रोटी की दासता से मुक्त करना आज की सवसे वडी आवश्यकता है। बीसवीं सदी के कुछ व्यक्ति 'रोटी के हाथों विके हैं, तो कुछ भौतिक वैभव के।' उनके लिए ईंट, कंकड़ और पत्थरों का संग्रह ही जीवन है या चौबीस घण्टों में केवल रोटी के दो टुकड़े प्राप्त करना ही जीवन का पुरुषार्थ है। इस प्रकार जीवन भौतिकता की कालकोठरी में वन्दी वना छटपटा रहा है। 'सर्वोदय' भौतिकता की कालकोठरी में वन्दी जीवन को स्वतन्त्र कर, अध्यात्म के अनन्त सौन्दर्य-सागर मे गोते लगाने के लिए सामर्थ्यवान बनना चाहता है। वह शक्ति के विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर आधारित ग्राम-राज्य-व्यवस्था द्वारा विश्व-सरकार की स्थापना कर विश्व-शान्ति, विश्व-संस्कृति और विश्व-प्रेम को प्रोत्साहन देता है, वह

झूठे राष्ट्रीयवाद एवं अन्य वादों की कटुता का विनाश कर मानवता को यथार्थ रूप मे सुखी बनाना चाहता है। मैं आप लोगों के मध्य सर्वोदय का महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम लेकर आया हूँ। यदि आप लोग अनुमति दें, तो उसे मैं आप लोगो के सामने उपस्थित करूँ।

महेशचन्द्र : हम लोग सर्वोदय के कार्यक्रम का अवश्य ही स्वागत करेंगे। आप शीघ्र ही प्रस्तुत करने की कृपा करें।

मधुसूदन : हमे उत्पादन के हर क्षेत्र मे सहकारिता के सिद्धान्त को अपनाना होगा। सहकारी कृषि तथा सहकारी उद्योग-धन्धों के माध्यम से हम अपनी स्थिति में सुधार कर सकते हैं। नगर-राज्य की स्थापना तभी सम्भव हो सकती है, जब नगर के सभी नागरिक स्वेच्छा से इसमें सम्मिलित हों। तब तक हम लोग जितने नागरिक स्वेच्छा से सहकारी कृषि-पद्धति एवं सहकारी उद्योग में सम्मिलित होना चाहें, उन्हें लेकर अपना कार्य आरम्भ कर सकते हैं। मैं इस सम्बन्ध मे आप लोगों के विचार जानना चाहता हूँ।

महेशचन्द्र : हम सभी लोग सहकारी कृषि तथा सहकारी उद्योग-धन्धों से पूर्ण सहमत हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है, हमारे यहाँ के जमींदार साहब को छोड़ अन्य सभी व्यक्ति इसमें सहर्ष सम्मिलित हो जायेंगे। सर्वोदयपुरी की सफलता ने यहाँ के नागरिकों को नगर-राज्य की स्थापना के लिए अधीर कर दिया है।

मधुसूदन : अच्छा, तो आप लोग जाकर उन सभी व्यक्तियों की सहमति प्राप्त करने का प्रयत्न कीजिये जो कि यहाँ उपस्थित नहीं हैं, ताकि शीघ्र ही कार्य आरम्भ हो जाय। जय मानवता! जय विश्व-बन्धुत्व! सर्व-मंगलम्! (सभी का प्रस्थान)

पटाक्षेप

तृतीय दृश्य

[स्थान : सर्वोदयपुरी का प्रांगण। नागरिकों
की सभा हो रही है।]

नगर-श्रेष्ठ : सर्वोदयपुरी के नागरिको ! हमें यह सूचित करते हुए अत्यन्त दुःख हो रहा है कि गत रात दस्युराज बलबीर सिंह अपने साथियों सहित नगर-कोष से बीस हजार रुपये लेकर तथा प्रियंवदा का हरण कर भाग गये हैं। आज हमारे सामने अत्यन्त उलझनपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गयी है।

विराज : हमें शीघ्र ही दस्युओं का पता लगाकर प्रियंवदा के छुड़ाने का प्रयत्न करना चाहिए।

नगर-श्रेष्ठ : यदि आप लोगों में से किसीको दस्युओं के निवास-स्थान का पता हो, तो सूचित करने का कष्ट करें, ताकि उचित व्यवस्था की जा सके।

एक नागरिक : दस्यु-दल सदा होशंगाबाद के समीप फैली हुई गिरिमाला में विचरण करता रहता है।

नगर-श्रेष्ठ : प्रधान प्रबन्धकजी !

सेण्ट जेराल्ड : आज्ञा !

नगर-श्रेष्ठ : आप इसी समय आवश्यक व्यक्तियों को साथ ले जाकर प्रियवदा की मुक्ति का प्रयास करें।

ललितांगी : यदि आप मुझे और बहन नीलम को प्रधान प्रबन्धकजी के साथ जाने की अनुमति प्रदान करें, तो बडी कृपा होगी।

नगर-श्रेष्ठ : लेकिन क्या आप लोगों का जाना उचित होगा ?

नीलम : क्यों नहीं। बहन प्रियंवदा की मुक्ति में हम लोग विशेष सहायक सिद्ध होंगी।

नगर-श्रेष्ठ : अच्छा, आप लोग भी जाने की व्यवस्था करें !

स्वामी महामूर्खानन्द : प्रियंवदा देवी की खोज मे मुझे भी जाने की अनुमति प्रदान करने की अनुकम्पा करे ।

नगर-श्रेष्ठ : अवश्य । आप भी ललितांगी देवी तथा नीलम देवी के साथ रहेंगे । इस निर्णय के साथ आज की सभा भंग की जाती है ।

पटाक्षेप

चतुर्थ दृश्य

[स्थान : चंपानगरी के प्रसिद्ध सेठ कालूमल का निवास । समय : दोपहर । सेठ कालूमल अपनी गद्दी पर बैठा तिजोरी के रुपये गिन रहा है । मुनीम लिख रहा है । बाजू की खिड़की, जो बाँयें हाथ के रास्ते की ओर खुलती है, के पास बलवीर सिंह और प्रियंवदा नकाबपोश पहने खड़ी हैं ।]

(सुरेन्द्र सिंह का प्रवेश । सुरेन्द्र सिंह आकर सैनिक ढंग से बलवीर सिंह को प्रणाम करता है ।)

बलवीर सिंह : कहो सुरेन्द्र सिंह, सब व्यवस्था हो गयी ?

सुरेन्द्र सिंह : जी हाँ ।

बलवीर सिंह : सब जवानों को कहाँ रखा है ?

सुरेन्द्र सिंह : मैं गत रात्रि में ही आकर सब व्यवस्था कर चुका हूँ । कुछ जवान इस मकान के पीछे घसीटा ढीमर के मकान में तैयार बैठे हैं और कुछ सामने के उस मनोहर नाई के मकान में तैयार आप की सीटी की प्रतीक्षा कर रहे है ।

बलवीर सिंह : और पुलिस का कुछ पता चला ?

सुरेन्द्र सिंह : जी हाँ । रात्रि में ही वीरेश सिंह लौटा है ।

बलवीर सिंह : उसने क्या कहा ?

सुरेन्द्र सिंह : उसने बतलाया कि इस समय पुलिस का पड़ाव यहाँ से करीब पैंतीस मील की दूरी पर पड़ा हुआ है। लाखम सिंह के नेतृत्व में हमारे दल के जो पाँच व्यक्ति हैं, वे पुलिस को चकमा देकर काफी दूर ले जा चुके हैं। इसके सिवा मैंने ग्राम के चारों ओर अपने आदमियों को राइफल सहित पेड़ों पर छिपा दिया है। अतः पुलिस का कोई भय नहीं है। साथ ही यहाँ की जनता पूरी मदद करने को तैयार है।

बलवीर सिंह : ठीक है। (सुरेन्द्र सिंह सैनिक प्रणाम करके चला जाता है)

बलवीर सिंह : (प्रियंवदा से) आज मैं तुम्हें दिखाना चाहता हूँ कि हम लोग किस प्रकार डाका डालते हैं।

प्रियंवदा : मुझे इस कृत्य से घृणा है।

बलवीर सिंह : होगी, परन्तु मुझे नहीं है। वह देखो, इस आदमखोर राक्षस का शिकार बनने के लिए कुछ भोले-भाले दीन दुःखी ग्रामीण आये हैं। सुन लो अपने कानों से इस भयानक जन्तु की बातें। शायद इसके बाद मुझसे घृणा करना छोड़ दो।

(मुलुवा, सुखई और बिहारी : तीन ग्रामीणों का प्रवेश। सेठ से राम-राम करने के बाद वे बैठ जाते हैं।)

मुलुवा : सुखई, अब जो कुछ सेठजी से कहना हो कह डाल। सेठजी बड़े दयालु आदमी हैं।

सेठ कालूमल : कहो-कहो, सुखई क्या बात है ! जो कुछ भी मुझसे आप लोगों की सहायता करते बनेगी, उसके लिए मैं सदा तैयार हूँ।

सुखई : गरीबपरवर, मेरी एक कन्या है। मैं उसके ऋण से उऋण होना चाहता हूँ।

सेठ कालूमल : बिलकुल ठीक सोचा है तुमने। कन्या धन पराया है। फिर जवान लड़की 'सड़ा भात' कहलाती है। उससे जितनी जल्दी

उद्धार हो सके, उतना ही अच्छा है। फिर कन्यादान से बढ़कर कोई पुण्य इस संसार मे नहीं है। शीघ्र ही अपने जीवन को सफल करो। कहो, इस पुण्य-कार्य में तुम मेरी क्या सहायता चाहते हो?

मुलुवा : सेठजी! सुखई को एक हजार रुपयों की जरूरत है।

सेठ : बस। महँगाई का जमाना है, एक हजार रुपया क्या होते हैं? कम-से-कम तीन दिन मे पॉच-छह सौ रुपये की शराब ही लग जायगी। फिर खिलाना-पिलाना और देना-लेना रहा, सो अलग।

बिहारी : (ओंठ चाटते हुए) ठीक ही तो कह रहे हैं सेठजी। कम-से-कम पॉच-छह सौ रुपया तो शराब में ही उठ जायेंगे। कम-से-कम दस-बारह बोतल तो मै अकेले ही तीन दिन में पी जाऊँगा।

सुखई : नहीं, मुझे अभी सरकारी तकावी चुकाना है। फिर मेरे पास तो अब केवल दस एकड जमीन ही बची है।

बिहारी : अरे क्यों सुखई भानजा, क्या बोला तू? तेरे पास तो पहले बीस एकड़ जमीन थी न! मैं तो आज पॉच वर्ष बाद लौटा हूँ। मुझे तो कुछ पता नहीं है।

सुखई : क्यों मामा, तुम्हे नहीं मालूम! सब-कुछ भूल गये। अरे दादा के गुजरने पर मरण-भोज के लिए पॉच एकड़ जमीन इन्ही सेठ के यहॉ रेहन रखवाकर पॉच सौ रुपये दिलवाये थे।

बिहारी : हॉ, दिलवाये तो थे। परन्तु तुमने क्या वे रुपये नहीं चुकाये। बीस-बीस एकड़ के काश्तकार हो और पॉच सौ रुपट्टी नहीं चुका सकते!

सुखई : चुकाता कहॉ से मामा! जब पैदा हो, तब तो चुकाऊँ। पहले साल सूखा पड़ गया। बीज भी नहीं लौटा। दूसरे साल फसल को गिरुआ खा गया। दो साल से ब्याज इतना बढ़ गया कि मेरी हिम्मत चूकने लगी। मैंने वह जमीन सेठजी को ही देकर उनके पैर छू लिये।

बिहारी : और दूसरे पॉच एकड़ का क्या हुआ!

सुखई : पहली औरत के मरण-भोज के लिए और मेरी दूसरी शादी के लिए रकम की जरूरत पड़ गयी थी। उस जमीन को भी सेठजी के यहाँ ही रखा था और फिर उन्हें ही दे दिया।

बिहारी : तो अब इस जमीन को भी सेठजी को देने आया है क्या?

सुखई : नहीं मामा! ऐसी बात नहीं है। अब मेरी जमीन मुझसे कोई नहीं छीन सकता। सर्वोदय-पुरी के उदार नागरिकों ने हमें मरने से बचा लिया है। उनके द्वारा निर्मित नर्मदा-घाटी बाँध हम गरीबों के लिए ईश्वर का वरदान सिद्ध हुआ है। इसी वर्ष हम लोगों की उपज दूनी हुई है।

बिहारी : लेकिन नर्मदा-घाटी बाँध का जल तुम्हें सर्वोदयपुरीवाले कैसे देते होंगे? तुम्हारा गाँव मारवाड़ा तो सर्वोदयपुरी से करीब बीस मील दूर है। फिर देते भी होंगे, तो जल का काफी पैसा लेते होंगे।

सुखई : नहीं मामा! वे लोग हमसे कुछ भी नहीं लेते। कहते हैं, हवा, जल, जमीन सबकी है। मामा किसी दिन चलकर सर्वोदयपुरी के नागरिकों से भेंट तो करना। लगता है, वे लोग इस स्वार्थी पृथ्वी के आदमी नहीं हैं, बल्कि देवदूत हैं, जिन्हें ईश्वर ने हम गरीबों का दुःख-दारिद्र्य दूर करने को भेजा है। सर्वोदयपुरी से बीस मील तक के आसपास के ग्राम इस नर्मदा-बाँध के जल से लहलहा उठे हैं।

बिहारी : सुखई! जब तेरी फसल अच्छी हुई है, फिर कर्ज क्यों लेता है?

मुलुवा : रहने दो मामा! इस कर्ज का रहस्य तुम्हारी समझ में नहीं आयेगा।

बिहारी : तो इसके भीतर क्या कुछ और रहस्य है। तो क्या यह कर्ज सुखई अपनी लड़की की शादी के लिए नहीं ले रहा है?

मुलुवा : कुछ लड़की की शादी के लिए है और कुछ दूसरे कामों के लिए है।

बिहारी : दूसरा काम कौन-सा है?

मुलुवा : तुम्हें नहीं मालूम मामा! हरिदयाल, जो सर्वोदयपुरी के निवासी

हैं, वे हमारे गाँव में आये है। उन्होंने गाँवो के लोगों की एक समिति बनायी है। वह समिति कुछ ग्रामोद्योग आरम्भ कर रही है। उसीमे यह पूँजी लगानी है। यह समिति कुछ मशीनें भी मँगा रही है, जिससे हमारी आवश्यकताओं की वस्तुएँ, जैसे—साबुन, सोडा, बटन, कपड़े, लकड़ी का सामान तथा लोहे का सामान भी बन सके। अम्बर चरखा-केन्द्र पहले ही आरम्भ हो चुका है।

सेठ कालूमल : सर्वोदयपुरी का नाम तो हमने भी सुना है और जब से सुना है, तब से एक बार उसे देखने की इच्छा पैदा हो गयी है। मालूम नहीं, कब वह महान् दिन आयेगा, जब उस 'स्वर्गपुरी' के दर्शन होंगे। सच पूछो तो भाई, हम लोग भी इस पैसे की खटखट से ऊब गये है। लेकिन क्या करें, लाचार है। यदि हमें कोई दो रोटी और दो धोती देने का आश्वासन दे, तो हम उसे यह सम्पत्ति आज ही सौंप दें। अच्छा, तो सुखई, तुम्हे कितने रुपयों की जरूरत है?

सुखई : एक हजार की।

सेठ कालूमल : मुनीमजी, सुखई से उसकी दस एकड़ जमीन को रेहन करने का स्टाम्प लिखवाकर उसे एक हजार दे दीजिये।

(मुनीम स्टाम्प लिखवाकर एक हजार रुपया सुखई को देता है। सुखई, मुलुवा और बिहारी जाते हैं। बलवीर सिंह सीटी बजाता है। उसके नकाबपोशधारी व्यक्ति आकर सेठ कालूमल के घर को घेर लेते हैं। कुछ भीतर जाकर तिजोरी के रुपये अपने अधिकार में कर लेते हैं।)

एक दस्यु : (सेठानी और उसकी पुत्री रूपमती से) शीघ्र उतार दो ये गहने।

सेठानी : आप लोगों को बहुत-सा धन मिल चुका है, ये गहने तो छोड़ दो।

दूसरा दस्यु : नहीं, हम नहीं छोड़ सकते। आप लोग उतार दें, नहीं तो मैं स्वतः उतार लूँगा।

(वह झटके से रूपमती के गले का हार और नाक की नथ खींच लेता है।)

रूपमती : (चिल्लाकर) हाय राम!

प्रियंवदा : (दौड़कर रूपमती को सँभालती है) आप लोग भी कैसे पशु हैं। नथ ही लेनी थी, तो उसे उतार लेते, खींचकर नाक फाड़ने की क्या आवश्यकता थी?

(दस्यु बिना उत्तर दिये वहाँ से हट जाते हैं। प्रियंवदा रूपमती की नाक पर पट्टी बाँधती है और उसका खून साफ करके उसे पलंग पर लिटाकर दूसरे कमरे में जाती है।)

प्रियंवदा : यह क्या? अरे! सेठजी तो मूर्छित पड़े हैं और यह रक्त बह रहा है। मार से शरीर पर नीले रंग की लकीरें पड़ गयी हैं। और यह क्या! सेठानी को बाँधकर उस पर मिट्टी का तेल क्यों डाला गया है? क्या इसे जीवित जला दोगे? बोलो बलबीर सिंह! बोलो, क्या तुम मुझे यही अत्याचार दिखाने के लिए लाये थे?

बलबीर सिंह : चुप रहो प्रियंवदा। यह समय बकवाद का नहीं है। हमारे काम में बाधा डालने का प्रयत्न मत करो। मैं पूँजीपतियों का महाकाल हूँ, भक्षक हूँ। (सेठानी से) बोलो, जल्द बोलो, सोना कहाँ गड़ा है? नहीं बोलती तो जलवाता हूँ।

सेठानी : मेरा सब कुछ ले लो, लेकिन मुझे मत मारो। मुझे नहीं मालूम कि सोना कहाँ गड़ा है।

बलबीर सिंह : अच्छा, तुझे नहीं मालूम, तो इसे मालूम होगा (सेठ की ओर इंगित करते हुए) क्यों सेठ! तेरा सोना कहाँ है?

सेठ : (उठकर खड़े होते हुए) मुझे नहीं मालूम।

बलबीर सिंह : गरीबों को चूस-चूसकर धन जोड़ा है। बता, वह धन

कहाँ है ? अच्छा, नहीं बताता तो भोग उसकी सजा । (दो चाबुक मारता है)

प्रियंवदा : बस-बस, रहने दो, अत्याचार की भी सीमा होती है ।

बलबीर सिंह : इसने गरीबों पर अत्याचार ढाये हैं, तो इस पर अत्याचार होना ही चाहिए ।

सेठ काल्लूमल : ईश्वर का भी बड़ा विचित्र विधान है । अपराध कोई करे और दण्ड कोई पाये ।

बलबीर सिंह : तुम्हारे कहने का तात्पर्य ?

सेठ काल्लूमल : यही कि गरीबों पर अत्याचार मैंने कभी नहीं किया है और मुझे सजा मिल रही है ।

बलबीर सिंह : तुम जैसे आदमखोरों ने ही तो मानवता का रक्तपान कर उसे कंकाल बना दिया है, और अब चले हो निरपराध बनने ?

सेठ काल्लूमल : मानवता का रक्तपान मैंने नहीं किया । यह देखिये । (अपने बहते हुए रक्त में हथेली डुबाकर) यह है मानव का रक्त । जिसके कण-कण में चेतना भरी पड़ी है, जिसके अणु-अणु में ब्रह्म की निर्मल ज्योति व्याप्त है । जिसका हर कण सृजन की अपरिमित शक्ति से ओतप्रोत है । उस पवित्र रक्त को, जिससे सृष्टिकार नित-नया निर्माण करता है, उसे क्या मैंने बहाया है ?

बलबीर सिंह : बकवाद बन्द करो । गरीबों पर अत्याचार करनेवाला सुखी नहीं रह सकता । गरीबों की आहें उसे एक-न-एक दिन खा लेती हैं ।

सेठ काल्लूमल : सरदार ! आप भूल कर रहे हैं । गरीब गरीब पर कभी अत्याचार नहीं कर सका और न कर सकेगा ।

बलबीर सिंह : तो तुम क्या गरीब हो ?

सेठ काल्लूमल : क्या आप नहीं देख रहे हैं ! मुझसे बढ़कर गरीब इस विश्व में कौन होगा ? हम मृतप्राय जीवित हैं । आत्मा मलिन हो चुकी है । पौरुष समाप्त हो गया है । मानवता का शोषण और

हनन करनेवाली सामाजिक व्यवस्था को हम ढोये चले जा रहे हैं। विरोध करने तथा उसे परिवर्तित करने की हममें शक्ति ही नहीं रही। हम पुरुषत्वविहीन हो चुके हैं। हम मुर्दों की जिन्दगी जी रहे हैं। क्या यह कायरता नहीं है? क्या यह दीनता नहीं है? क्या यह गरीबी नहीं है? फिर भी आप यह कह रहे है कि मैंने गरीबों पर अत्याचार किया। गरीबों पर अत्याचार तो हमारी सामाजिक व्यवस्था कर रही है। इस पूँजीवादी व्यवस्था में इतनी अस्थिरता है कि यह किसी भी समय, किसीको भी दर-दर का भिखारी बना सकती है। इसमें व्यक्ति को भविष्य का आश्वासन नहीं है। संतान के उदर-पोषण और शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है। मानव के हृदय में सृष्टिकार द्वारा रचित देवत्व की आभा से आलोकित संतति प्रेम-रूपी चिन्तामणि है, तो क्या यह पाप है, क्या यह अभिशाप है, क्या यह अपराध है? उस दैवी प्रेम की पवित्र आभा से प्रेरित हो यदि व्यक्ति अपनी सन्तति के भविष्य को सुरक्षित बनाने के लिए पूँजीवादी व्यवस्था में अर्थ-संग्रह करता है, तो क्या यह अपराध है? और यदि अपराध है, तो हो। मानव जब तक मानव है, तब तक वह अपनी सन्तति के भविष्य को पूर्ण सुरक्षित करने में कुछ भी उठा नहीं रखेगा। फिर भले ही उसे तुम जैसे नासमझ और ओछी बुद्धिवाले के हाथ प्राण-दंड ही क्यों न भोगना पड़े।

बलबीर सिंह : सेठ, शायद तुम अपने मस्तिष्क का सन्तुलन खो चुके हो। बलबीर सिंह को नासमझ और ओछी बुद्धि का कहने का दंड जानते हो?

सेठ कालूमल : जानता हूँ। सत्य कहने में मुझे कोई भय नहीं है। सत्य ब्रह्म का स्वरूप है। जब उसके आविर्भाव से यह स्वार्थी शरीर आलोकित होता है, तब उसमें अलौकिक स्फूर्ति और ओज आ जाता है। उस समय उसकी वाणी असत्य और अत्याचार के प्रतिकार के लिए ललकार उठती है। पुरुषत्वहीन पौरुषमय हो जाता है, कंकाल

उठकर ताडव नृत्य करने लगते हैं, बौना आकाश को छूने को दौड़ पड़ता है, पतंगा भगवान् भास्कर को निगल जाने को आतुर हो उठता है। सत्य के प्रकाश से शक्तिविहीन रिक्त हृदय-उदधि में बड़वानल आ जाता है। सत्य की इस महाशक्ति के चमत्कार को देखकर सृष्टि स्वतः स्तम्भित रह जाती है। तुम मुझे प्राणों का क्षुद्र मोह दिखाते हो। अब मैं जाग्रत हूँ। शरीरजन्य स्वार्थों से ऊपर हूँ। फिर मुझे प्राणों का भय कैसा? सत्य का अन्वेषक स्वार्थों की होली जलाता और प्राणो का गेंद खेलता है।

बलबीर सिह : बन्द करो अपने इस दर्शन को।

सेठ काल्मल : क्या कहा, दर्शन को बन्द करूँ? उस दर्शन को बन्द करूँ, जो जीवन का सत्य, सृष्टि का नवनीत और शाश्वत शक्ति की निर्मल आभा है? इस कर्मक्षेत्र की तीव्र अनुभूति जब आत्मा पर पड़े हुए मोह-तन्तुओं को विक्षत कर देती है, तब आत्मा की वाणी प्रस्फुटित हो पड़ती है; वही दर्शन है, वही ब्रह्मनाद है, वही शब्द-ब्रह्म है, वही वेद-वाणी है। आत्मजा, दर्शन-भागीरथी, सत्य-सलिला सौन्दर्य की लोल लहरों को लिये मंगलमय कूलों के मध्य कर्मभूमि को पावन करती हुई—निर्बाध एवं अनवरत गति से अनन्त की ओर प्रवाहित होती है।

बलबीर सिह : दर्शन! दर्शन! दर्शन! तू स्वर्ण के अन्ध-कूप में बन्दी, कीटों का भक्षण करनेवाला कूपमण्डूक, क्या समझे कि दर्शन क्या है? और···।

सेठ काल्मल : मैं यह अच्छी तरह से समझता हूँ कि दर्शन शिक्षित और सभ्य कहे जानेवालों की ही बपौती नहीं है। तुम मानव होकर भी मानव की आत्मा की असीम शक्तियो से अपरिचित हो। अरे, यह वह पुण्यभूमि है, जो सदा शाश्वत-शक्ति की निर्मल कान्ति से स्निग्ध रही है। यहाँ का भिक्षुक भी वेदो की ऋचाओ को गाकर भिक्षा माँगता है।

बलवीर सिंह : मै तो केवल यह जानना चाहता हूँ कि तुमने मुझे अल्प-बुद्धि व्यक्ति कहकर क्यों सम्बुद्ध किया ?

सेठ काल्मूल : यदि कोई विवेकशील व्यक्ति है, तो वह एक-एक काँटे को नष्ट करने की अपेक्षा बबूल के उस पेड़ को ही निर्मूल करने की सोचता है, जो एक काँटा नष्ट होने पर नित-नये सैकड़ों काँटो को उत्पन्न करता है। सरदार ! तुम उस अविवेकी पुरुष के समान हो, जो अपना जीवन विषैले फलों को नष्ट करने मे ही व्यतीत कर देता है। किन्तु उसके महाप्रस्थान के पश्चात् भी विषैले फलों को उत्पन्न करनेवाला वृक्ष बना रहता है और निरन्तर विष के भण्डार को भरता रहता है। तुम पूँजीपतियो की हत्या करने मे तन्मय हो। तुम अपने जीवन-काल में चाहे कितने ही पूँजीपतियों की हत्या क्यो न कर डालो, परन्तु तुम उन्हें पूर्णतः समाप्त नहीं कर सकते। पूँजीवाद के विशाल उदर मे लाखों पूँजीपतियों के बीज पोषित हो रहे है। यदि तुममें विवेक और पौरुष है, तो सर्वोदय द्वारा चलाये गये पूँजीवाद के विनाश के महायज्ञ में तुम भी आहुति दो। हमे तो पूँजीवाद ने पंगु बना दिया है। मेरी समझ में तुम एक ऐसे अशक्त और अल्प-समझ शिकारी हो, जो शक्तिवान् और पौरुषवान् होने का दम्भ तो भरता है, लेकिन केहरि को छोड़ उसके भोजन अजा का शिकार करता है।

(आवाज आती है)

दौड़ो ! दौडो ! बचाओ ! नीच ! पापी !

प्रियंवदा : अरे यह तो किसी नारी की आवाज है। चलो............

(प्रियंवदा और बलवीर सिंह आवाज की ओर जाते हैं।)

प्रियंवदा : यह क्या ? नीचता और दुष्टता की चरमसीमा। रुधिर से लथपथ रूपमती के साथ बलात्कार का प्रयत्न ! बलवीर सिंह ! क्या तुम मुझे यही बीभत्स दृश्य दिखाने के लिए साथ लाये थे ? आसुरी

वृत्तियों का नग्न नृत्य ! मैं नहीं जानती थी वलवीर सिंह कि तुम लोग मनुष्यता से इतने गिर गये हो।

(वलवीर सिंह यह दृश्य देखकर क्रोध से काँपने लगा। उसने कमर से लटकती हुई कटार फेंककर सुरेन्द्र सिंह को मारी। कटार दरवाजे से टकराकर सुरेन्द्र सिंह की जंघा में लगी।)

सुरेन्द्र सिंह : वलवीर सिंह, मुझे यह पता न था कि एक नारी को प्रसन्न करने के लिए तुम अपने उस विश्वासपात्र के प्राणों के ग्राहक वन जाओगे, जिसने अनेक वार अपने प्राणों की वाजी लगाकर तुम्हारे प्राणों की रक्षा की थी। अभी तक तुमने सुरेन्द्र सिंह की मित्रता देखी है और अव उसकी शत्रुता देखना।

(सुरेन्द्र सिंह खींचकर कटार मारता है, जो वलवीर सिंह के वायें हाथ में धँस जाती है। सुरेन्द्र सिंह द्रुतगति से वाहर चला जाता है। सीटी वजती है और सव लोग भाग जाते हैं।)

पटाक्षेप

पंचम दृश्य

[स्थान : सिरोही-सदन का एक प्रकोष्ठ। कोकिला, मधुसूदन एवं महेन्द्र सम्मिलित हैं।]

कोकिला : मराठवाडा से हरिदयाल का यह पत्र आया है।

मधुसूदन : क्या लिखा है उसने ? कुछ सफलता मिली या नहीं ?

कोकिला : हाँ, पर्याप्त सफलता मिली है। हरिदयाल के प्रयत्न से प्रान्तीय सरकार ने वहाँ की पड़ती जमीन को भूमिहीनो में वितरित करना स्वीकार कर लिया है।

मधुसूदन : ग्रामोद्योग के सचालन में कुछ प्रगति हुई ?

कोकिला : लिखा है, इस समय पचीस अम्बर चरखे और एक करघा काम कर रहा है। अन्य उद्योग-धन्धे आरम्भ करने का यत्न चल रहा है।

मधुसूदन : कहिये महेन्द्रजी, अपने यहाँ की गतिविधि क्या है?

महेन्द्र : ग्राम के उत्तर में काष्ठ-उद्योग आरम्भ किया गया है, जहाँ का प्रथम टेबुल आप ही के हाथों निर्मित हुआ था। वहाँ लकड़ी के सामान अधिकाधिक बन रहे हैं।

मधुसूदन : हमारे सामान की माँग कैसी है अब?

महेन्द्र : दिल्ली, बम्बई, कानपुर में आरम्भ किये गये बिक्री-केन्द्र बहुत ही सफलतापूर्वक कार्य कर रहे हैं। हमारे यहाँ के सिले कपड़े, हाथ-करघे पर बनी साड़ियाँ, पीतल के बर्तन और यहाँ तक कि हमारे यहाँ की बनी टोकनी तथा चटाइयाँ वहाँ के बाजारों में अत्यधिक बिक रही हैं। दूसरी ओर ग्राम के दक्षिण में स्थापित पीतल-उद्योग, ग्राम के पूर्व में स्थापित वस्त्र-उद्योग तथा पश्चिम में स्थापित सिलाई एवं बाँस-उद्योग सफलतापूर्वक उत्पादन कर रहे हैं। हर उद्योग से इतना अधिक उत्पादन हो रहा है, जिसकी हमें आशा ही नहीं थी और माल भी अच्छे प्रकार का बन रहा है।

मधुसूदन : उत्पादन बढ़ेगा और अभी और अधिक बढ़ेगा। जब श्रमिक यह समझ लेता है कि उसके द्वारा निर्मित वस्तु का लाभांश उसे ही मिलनेवाला है, तब वह उसके निर्माण में अपनी पूरी शक्ति, कुशलता तथा मनोयोग केन्द्रित कर देता है। उस वस्तु को देखकर उसे गौरव होता है। यह उसकी अपनी वस्तु है। उसे आत्मिक सन्तोष प्राप्त होता है, क्योंकि उस वस्तु के निर्माण में मानव की सृजन-क्षुधा को तृप्ति प्राप्त होती है। सम्पूर्ण वस्तु के निर्माण में व्यक्ति को आनन्द प्राप्त होता है। साम्यवादी और पूँजीवादी व्यवस्था में व्यक्ति वस्तु के केवल एक ही अंग के निर्माण से ऊब जाता है। वह कार्य, जिसमें मानव को आनन्द प्राप्त नहीं होता, मानव-जीवन का शनैः-शनैः

भक्षण करने लगता है। साम्यवाद ने तो मानव को उत्पादन करनेवाली मशीन का एक कल-पुर्जा ही बना दिया है।

महेन्द्र : मैं आपसे यह पूछने आया था कि लाभांश का वितरण किस आधार पर किया जाय? काष्ठ-उद्योग का लाभ सब विभागों से अधिक है। दूसरी ओर बॉस-विभाग का लाभ सब विभागों से कम है।

मधुसूदन : मानव की भौतिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियाँ श्रम की ही देन हैं। खाद्य, वस्त्र, आवास, साहित्य, कला या विज्ञान को लें, सभी मे मानव-श्रम समान रूप में व्याप्त है। अतः मानव-श्रम ही वस्तुओं के मूल्यांकन का एकमात्र मापदण्ड हो सकता है, सोना चाँदी नहीं। एक चटाई बनानेवाले ने आठ घण्टे कार्य किया और टेबुल बनानेवाले ने भी आठ घण्टे ही कार्य किया है। अतः सभी उद्योगों के लाभ का वितरण सभी श्रमिकों में समान होना चाहिए।

(नीलम का प्रवेश)

नीलम : प्रणाम ! (मधुसूदन को हाथ जोड़कर प्रणाम करती है)

मधुसूदन : आओ बहन नीलम।

कोकिला : अरे नीलम ! (उठकर नीलम को आलिंगन में आबद्ध कर लेती है। भेंट करने के बाद कोकिला नीलम को पकड़कर बैठाती है।)

मधुसूदन : कहो नीलम, सब कुशल तो है ?

नीलम : जी हाँ, सब कुशल है। परन्तु एक दुर्घटना हो गयी है।

मधुसूदन : दुर्घटना ! कैसी दुर्घटना ?

नीलम : बलवीर सिंह बीस हजार रुपये और प्रियंवदा को लेकर भाग गया है।

मधुसूदन : बड़ा ही अशुभ सम्वाद सुनाया। प्रियंवदा की खोज मे कुछ लोगो को भेजा नहीं गया ?

नीलम : भेजा गया है। मैं और ललितांगी प्रधान नगर-रक्षक के साथ

जा रही थी। परन्तु मैंने आपको सूचना देना अधिक आवश्यक समझा, इसलिए स्वतः चली आयी। वे लोग प्रियंवदा की खोज में गये हैं। अरे यह क्या! आपकी आँखों में आँसू!

मधुसूदन : हाँ नीलम, इस हृदय पर किसीका वश नहीं चलता। मैं भी तो आखिर मानव ही हूँ। मेरा बिस्तर ठीक कर दो कोकिला। मैं विश्राम करूँगा।

(सभी का प्रस्थान)

पटाक्षेप

षष्ठ दृश्य

[स्थान : वन। सर्वोदयपुरी का नगर-रक्षक दल तथा स्वामी महामूर्खानन्द और ललितांगी एक वृक्ष के नीचे ठहरे हैं। सभी तम्बुओं के बाहर बैठे हुए अस्त होते दिनकर की ओर देख रहे हैं।]

ललितांगी : स्वामीजी! कितना सुहावना दृश्य है! कर्मवीर मार्तण्ड सम्पूर्ण दिवस के श्रम से श्रान्त हो सन्ध्या सुहागिनी की अलकों के मध्य विश्राम ले रहा है। प्रखर, किरणधर भी अपनी प्रेयसी के प्रेम की स्निग्धता से शीतल हो आत्मलीन हो गया है। इस समय उसके आनन पर दारुण ताप के स्थान पर श्रीछवि किलोलें कर रही है।

स्वामी महामूर्खानन्द : अति सुन्दर! नारी ने नारी की शक्ति को पहचान लिया। पुरुष भले ही पुरुष की शक्तियों से अवगत न हो, परन्तु नारी नारी की महती शक्तियों से अपरिचित नहीं रह सकती। क्यों भाई, क्या आप लोगों में से कोई साम्यवादी है?

प्रधान नगर-रक्षक : क्यों, क्या करेंगे साम्यवादी का?

स्वामी महामूर्खानन्द : क्या करूँगा यह बाद में बताया जायगा। पहले यह बताओ कि क्या कोई साम्यवादी है?

प्रधान नगर-रक्षक : अच्छा, थोड़े समय के लिए मुझे ही समझ लीजिये कि मैं ही हूँ।

स्वामी महामूर्खानन्द : अच्छा, तो सुनिये। आप सैद्धान्तिक रूप से पारिवारिक जीवन को मान्यता नहीं देते। पति-पत्नी तथा माँ और सन्तान के सम्बन्धों को ऊपरी सम्बन्ध मात्र मानकर चलते हैं। अब आप अस्ताचल पर्वत की ओर देखिये और विचार कीजिये।

प्रधान नगर-रक्षक : मुझे तो वहाँ अस्त होते दिनकर के सिवा और कुछ नहीं दिखाई देता।

स्वामी महामूर्खानन्द : साम्यवादी चश्मे से देखनेवाले को मोटे खाके के सिवा जीवन की सूक्ष्मता दिखाई ही कैसे पड़ेगी ? शरीर में उसे केवल स्थूल पदार्थ ही दृष्टिगोचर होते हैं। शरीर के कण-कण में व्याप्त प्राण-शक्ति की अनुभूति उसकी क्षमता से परे है। तभी तो वह अपनी चरम सीमा पर पहुँचने पर नर-नारी के शाश्वत सम्बन्धों को केवल सांख्यिक सम्बन्ध (Static relation) मानता है और केवल कुछ योग्य नर-नारियों को ही सन्तति उत्पन्न करने का अधिकार देकर अनादि शक्ति के माँ की ममता के रूप में मानव को दिये गये महावरदान को छीन लेना चाहता है। प्रधान नगर-रक्षक! जो तुम्हारी आँखें नहीं देख पा रही हैं, वह मेरी आँखें देख रही है।

प्रधान नगर-रक्षक : क्या देख रही है ?

स्वामी महामूर्खानन्द : वही, जो अभी ललितागी ने देखा। दूर का श्रान्त-क्लान्त पथिक अपनी प्रेयसी के पवित्र प्रेम की स्निग्धता मे विश्राम कर रहा है। उसने प्रेम की असीम स्फूर्ति और उछलती उमगों से नव-स्फूर्ति और नव-शक्ति प्राप्त की है, जिसकी साक्षी उसके आनन पर नृत्य करती अलौकिक आभा है, जो सृष्टि को अदृश्य शक्ति का शाश्वत सन्देश सुना रही है। उस महान् सन्देश को विज्ञान द्वारा निर्मित जड़ मानव या साम्यवाद द्वारा रचित आर्थिक मानव हृदयंगम नहीं कर सकते।

प्रधान नगर-रक्षक : आप तो कोई गीत गुनगुना रही हैं ललितांगी देवी ! शायद आपने स्वामीजी का मार्मिक विवेचन नहीं सुना।

स्वामी महामूर्खानन्द : यह प्रकृति की उन्मत्त गोद का ही प्रभाव है, प्रधान नगर-रक्षक ! सुन नहीं रहे हो मनमोहन की मोहिनी वेणु की रागिनी, निर्झर का झर-झर राग, सरिता का कल-कल नाद, शीतल मन्द सुगन्ध समीर से झूमते मत्त कुंजरों से तरुवरों मे ध्वनित मर-मर का मधुर संगीत, मधुकरों की मधुमय गुंजार। सभी मिलकर स्वर्गीय संगीत का सृजन कर रहे हैं। अति भौतिकवाद और जड़ विज्ञान-वाद से जर्जर दीन-हीन आत्माएँ भी यहाँ आकर नव-स्फूर्ति ग्रहण किये बिना नहीं रहतीं। यहाँ हम ही हम हैं। विश्वात्मा से आत्मा का सुन्दर तादात्म्य ! यहाँ समरसता है, एकरूपता है। विश्वास की चेतना में प्रवाहित अलौकिक संगीत आत्मा की हृदय-वीणा पर ध्वनित हो रहा है। यहाँ आत्मा और विश्वात्मा के मध्य कोई व्यवधान नहीं है। यहाँ मानव द्वारा निर्मित कृत्रिम सभ्यता आत्मा और विश्वात्मा के मध्य प्राचीर नहीं बनती। यही तो है मानव को मानव बनाने के लिए अदृश्यप्रदत्त चिर-नूतन, अभिनव प्रकृति की उन्मुक्त गोद !

प्रधान नगर-रक्षक : वह देखिये स्वामीजी, चंचल कुरंग में कितनी स्फूर्ति ! कितनी चेतना ! कितनी उमंग और कितना उत्साह ! वायु में कितनी सुन्दर छलाँगें भर रहा है।

स्वामी महामूर्खानन्द : प्रकृति का हर प्राणी सदा वसन्तोत्सव मनाता रहता है। उसके अंग-अग से जीवन-शक्ति फूटी पड़ रही है। लेकिन निरीह अस्थिचर्मावशिष्ट मानव को छलाँग मारने की कौन कहे, सिर पर रखी वादों की गठरी के बोझ से एक-एक कदम उठाना भी दूभर हो रहा है। स्फूर्ति और उमंग के लिए वह मदिरा का आश्रय लेता है। अधरों पर स्मित लाने के लिए उसे हास्य-शब्दावली की

आवश्यकता होती है। हँसता भी है, तो हँसी में बनावट होती है। लगता है, वह दिनोदिन प्रकृति-प्रदत्त शक्ति खोता जा रहा है।

(पूर्व की ओर देखते हुए मौन धारण कर लेते हैं)

प्रधान नगर-रक्षक : सहसा मौन क्यों हो गये स्वामीजी ? क्या देख रहे हैं ?

स्वामी महामूर्खानन्द : देख रहा हूँ, विज्ञान के हाथ वेदाम बिके गुलाम को। अपने ही अहं के हाइड्रोजन बम पर बैठे अविवेकी मानव के भविष्य को। क्या तुम नहीं देख रहे हो ? अहं का अन्धकार मेदिनी को निगलता हुआ शनैः-शनैः बढ़ रहा है। मानव-सभ्यता की सघन रात्रि सन्निकट है। (ललितांगी से) तुम क्यों उदास दीख रही हो बेटी ?

ललितांगी : अभी तक हमें प्रियंवदा का पता नहीं चला। ईश्वर जाने, उस पर कौन-सा दुर्भाग्य टूटा है।

स्वामी महामूर्खानन्द : प्रियंवदा और दुर्भाग्य का शिकार हो, यह असंगत बात है। जो व्यक्ति विवेकरूपी अश्व के जुते कर्म-रथ पर आसीन होता है और उसे नीति के चाबुक से हाँकता है, उसके रथ के पीछे सौभाग्य-रेणु स्वाभाविक रूप से उड़ती है।

ललितांगी : फिर भी नारी नारी है।

स्वामी महामूर्खानन्द : हाँ, ठीक है, नारी नारी है और उसे नारी ही रहना चाहिए। किन्तु सर्वोदयपुरी की संस्कृति में निर्मित नारी 'अबला' नहीं, 'सबला' है। निरन्तर कर्म में रत, सर्वोदय की साधना मे तन्मय कोकिला, ललितांगी और प्रियंवदा आदि नारी-रत्नों को भला कौन अबला कहने का दुस्साहस कर सकता है ? नारी-समाज का इतना सामंजस्यपूर्ण विकास इतिहास ने कभी नहीं देखा था। कर्मक्षेत्र मे पुरुष की पूर्ण सहयोगिनी रहने पर भी उन्होंने कभी भी नारी के शील, प्रेम, त्याग, सेवा, बलिदान और ममता जैसे पुनीत गुणों को नहीं भुलाया। उनमें भौतिकवाद की लम्पटता और

उच्छृंखलता के स्थान पर आध्यात्मिकता और विवेकशीलता है। प्रियंवदा जहाँ भी होगी, अपनी साधना में निरत होगी।

ललितांगी : यह टापों की आवाज कहाँ से आ रही है!

प्रधान नगर-रक्षक : कोई दस्यु-दल आ रहा है।

(सभी स्तब्ध हो जाते हैं)

स्वामी महामूर्खानन्द : यह तो कोई दस्यु-दल विदित होता है। सभी नकाबपोश हैं।

प्रधान नगर-रक्षक : हाँ। हमें भी सतर्क हो जाना चाहिए।

(अपने दल को तैयार होने का इशारा करता है)

स्वामी महामूर्खानन्द : बेटी ललितांगी! अब हमारा कार्य सिद्ध होने में कोई विलम्ब नहीं है।

ललितांगी : सो कैसे?

स्वामी महामूर्खानन्द : या तो यह बलबीर सिंह का ही दल होगा अथवा यह दल हमें बलबीर सिंह के दल का स्थान बतायेगा।

(दस्यु-दल बढ़ता आता है)

प्रियंवदा : (अश्व रोककर) सर्वोदयपुरी का नगर-रक्षक दल यहाँ! (कुछ रुककर) अरे, यह ललितांगी ही तो है। (अश्व से कूद आगे बढ़कर) स्वामीजी को प्रियंवदा का प्रणाम स्वीकृत हो।

स्वामी महामूर्खानन्द : कौन प्रियंवदा! सदा सौभाग्यवती रहो!

ललितांगी : (दौड़कर) प्रियंवदा!

(दोनों आलिंगन में आबद्ध हो जाती हैं)

स्वामी महामूर्खानन्द : (अश्रु पोंछते हुए) प्रिय हृदयों का मिलनोत्सव कितना हृदयग्राही होता है। शरीर शिथिल हो जाता है। कण्ठ भर आता है। हृदय-सागर उमड़कर नयन-पथ से प्रवाहित होने लगता है। प्रेम-उदधि में ज्वार आ जाता है। भाषा व्यर्थ हो जाती है। शब्द भावों का भार वहन नहीं कर पाते। ब्रह्मवाणी मुखरित हो उठती है। मिलन-राग दसों दिशाओं में गुंजित होने लगता है।

सृष्टि ब्रह्मानन्द में निमग्न हो जाती है। यही तो है मानव-मानव का मिलन, आत्मा-आत्मा का मिलन।

(प्रियंवदा अपने और ललितांगी के अश्रु पोंछती है)

प्रियंवदा : (नगर-रक्षक दल की ओर बढ़कर) कहिये, आप लोग आनन्दित तो हैं ?

प्रधान नगर-रक्षक : ईश्वर की असीम अनुकम्पा से सब सकुशल हैं। लेकिन आप जब से गयी हैं, तभी से सर्वोदयपुरी उदास है। चिन्ता और दुःख का वातावरण छाया हुआ है। नागरिकों में कार्य करने की न तो रुचि दिखाई देती है और न उमंग। सांस्कृतिक कार्यक्रम होते हैं, पर उनमें कोई सम्मिलित नहीं होता। सर्वोदयपुरी का हर व्यक्ति यह अनुभव करता है कि उसके हृदय का एक अंश कहीं खो गया है। सर्वोदयपुरी का अणु-अणु सिसक-सिसककर कह रहा है : 'सर्वोदयपुरी की लाड़ली लली, कला की देवी, शील और सेवा की मूर्ति, जन-जन के हृदय की प्रेरणा कहीं खो गयी !' हम लोग आपकी कुशलता जानने के लिए आतुर हैं।

प्रियंवदा : आप लोगों की सद्भावना ने मेरा अहित नहीं होने दिया। स्वामीजी ! अब सब लोग मेरे साथ चलकर विश्राम करें, तो उत्तम होगा। आप लोग काफी थक चुके होंगे।

स्वामी महामूर्खानंद : ठीक है। आप सब लोग सामान व्यवस्थित कीजिये।

(सब लोग सामान व्यवस्थित कर अश्वों पर रखते हैं)

प्रियंवदा : (चिंतित भाव से) हमें शीघ्रता करनी चाहिए। बलबीर सिंह घायल अवस्था में ही अश्व पर सवार हैं। विलम्ब करना अधिक हानिप्रद होगा।

ललितांगी : क्या गहरी चोट है ?

प्रियंवदा : अब चिन्ता की बात नहीं है। अब तू आ गयी है। कितनी ही गहरी चोट क्यों न हो, शीघ्र ही ठीक हो जायगी।

(दोनों हँसने लगती हैं। सबका प्रस्थान)

पटाक्षेप

सप्तम दृश्य

[स्थान : बलवीर सिंह का सदन। एक प्रकोष्ठ में बलवीर सिंह और उसके साथी बैठे हुए हैं।]

बलवीर सिंह : महेश सिंह, आज मैंने तुम्हें अत्यन्त आवश्यक कार्य के लिए बुलाया है।

महेश सिंह : आज्ञा कीजिये।

बलवीर सिंह : देख रहा हूँ कि सर्वोदयपुरी का प्रभाव देश के कोने-कोने पर पड़ रहा है। दिन-रात नोटों को गिननेवाले, कागज के पुजारियों तक के हृदय मे सर्वोदयपुरी के महत्त्वपूर्ण कार्य ने अपना प्रभाव अंकित कर दिया है। मैं सोच नहीं सकता कि साधारण जनता इससे कितनी अधिक प्रभावित न होगी। महेश सिंह ! तुमने सेठ कालूमल की सर्वोदयसम्बन्धी बातें सुनी थीं !

महेश सिंह : जी हाँ, सुनी थीं। सेठ कालूमल ही क्या, हर गरीब, हर दीन-दुखी की दृष्टि सर्वोदयपुरी पर लगी है। सर्वोदयपुरी गरीबों की दुनिया मे आशा की किरण बनकर चमक रही है। आज देश की नस-नस में एक लहर दौड़ गयी है। हर ग्राम सर्वोदयपुरी बनना चाहता है और हर नागरिक सर्वोदयपुरी का सुसंस्कृतिक नागरिक। हमारे आसपास के ग्रामों के व्यक्ति एक बडी संख्या मे सिरोही और उन ग्रामों को जा रहे हैं, जहाँ सर्वोदयपुरी के नागरिकों ने ग्रामराज्य की नींव डाली है। सिरोही दूसरी सर्वोदयपुरी बनने जा रही है।

मधुसूदन और कोकिला जिस ग्राम को पहुँच जाते हैं, उसे स्वर्ग बना देते हैं।

बलबीर सिंह : क्या महेश सिंह, तुम सिरोही गये थे ?

महेश सिंह : जी नहीं, मैं नहीं गया था। वहाँ से ये हरीचन्द आये हैं, जो वहाँ अपने दल का कार्य करते हैं।

बलबीर सिंह : कहिये, वहाँ मधुसूदन को कितनी सफलता मिली ? मैं जो कुछ भी पूछूँ, खुले हृदय से साफ-साफ बतलाइये। मैं वह अविवेकी पुरुष नहीं, जो अपने प्रतिद्वन्द्वी की सफलता अपने सकीर्ण हृदय के कारण नहीं सुन सकता। मैं तो उसकी सफलता का सही-सही मूल्यांकन कर अपने भविष्य की नीति स्थिर करना चाहता हूँ। इसलिए आप जो कुछ भी कहें, ठीक-ठीक कहें।

हरीचंद : सिरोही का हर नागरिक कार्य में लगा हुआ है। बेकारी की समस्या समाप्त हो चुकी है। सहकारी उद्योग और सहकारी खेती आरम्भ कर दी गयी है। जमींदार को छोड़ सभी व्यक्ति अपनी इच्छा से इनमें शामिल हो चुके हैं। सिरोही की बनी वस्तुओं को अच्छा बाजार मिला है। हर मजदूर इतना कमा लेता है कि वह अपना जीवन आनन्दपूर्वक बिता सके। जिस समय जमींदार सहकारी खेती में सम्मिलित हो जायँगे, उसी समय वहाँ ग्राम-राज्य की स्थापना हो जायगी।

बलबीर सिंह : तुम लोग सहकारी-खेती और सहकारी-उद्योगो को असफल बनाने का प्रयत्न क्यों नहीं करते ?

हरीचंद : हम लोग नागरिकों को समझाते हैं कि सर्वोदय एक बहकावा है, एक ऐसा आदर्श है, जो कभी प्राप्त नहीं हो सकता। यह केवल आनेवाले साम्यवाद को पीछे ढकेलने का कार्यक्रम है। किन्तु वे तो कहते हैं कि सर्वोदय ने हमें भोजन दिया, कपड़ा दिया, घर दिया और इन सबसे बढ़कर हमारे जीवन में प्रेम की ज्योति जगायी। अब आप ही कहिये, जिसने भूख से तड़पते आदमी

को भोजन दिया हो और मरनेवाले को जीवन दिया, उसे भला कौन छोड सकता है ? और इन सबसे अधिक प्रभाव पड़ रहा है, सर्वोदयी कार्यकर्ताओं का ।

बलवीर सिंह : सो कैसे ?

हरीचंद : मधुसूदन और कोकिला सिरोही के जन-जीवन में पूर्णतः घुल-मिल गये हैं । मधुसूदन की मधुर वाणी दुःखियों का संताप हरती है, उन्हे जीवन का आश्वासन देती है । उनका निरभिमानी स्वभाव व्यक्ति को सहज ही समीप खींच लेता है । उनके अधरों की निश्छल मुस्कान व्यक्ति के हृदय मे आनन्द की गागर उँड़ेल देती है । उनका सुसंस्कृत एवं परिष्कृत व्यक्तित्व अपनी मनोहर सुगन्ध से सहज ही जिज्ञासा उत्पन्न करता है कि देखें, इस नन्दनवन मे कौन-कौन-से फूल खिले हैं । दूसरी ओर कोकिला प्रेम और सेवा की मूर्ति ही है । वह प्रतिदिन प्रातःकाल एवं संध्या समय ग्राम के हर रोगी के समीप जाकर उन्हें अपने हाथों से दवा पिलाती है और बिस्तर बदलती है । घर-घर जाकर हाथ से बर्तन, वस्त्र तथा घर स्वच्छ करके स्वच्छता की शिक्षा देती है । उसने 'महिला-मंडल' की स्थापना कर नारियो को ललित-कलाओं की शिक्षा देना भी आरम्भ कर दिया है । इनका प्रदर्शन भी होता है और इस प्रदर्शन के परिणामस्वरूप वहाँ के नैराश्य एवं दुःखी जीवन मे आनन्द की हिलोरें आ गयी हैं । जन-मन में नव-स्फूर्ति और नव-उत्साह परिलक्षित होता है ।

बलवीर सिंह : सुना तुमने महेश सिंह, सर्वोदय द्रुतगति से सफलता की ओर बढ़ा चला जा रहा है । यदि वह भारत में सफल हो गया, तो निस्सन्देह विश्व पर छाकर रहेगा । मुझे सर्वोदय की प्रगति देखकर भय लगने लगा है । महेश सिंह, इस प्रगति को रोकना होगा और किसी भी कीमत पर रोकना होगा ।

महेश सिंह : आज्ञा कीजिये, मुझे क्या करना होगा ?

बलवीर सिंह : तुम्हें सर्वोदयपुरी की सफलता का जादू, जो देश के

निवासियों के मस्तिष्क मे घर करता जा रहा है, उसे नष्ट करना होगा।

महेश सिह : कैसे ?

बलबीर सिंह : सर्वोदयपुरी की सफलता के प्रधान कारण नर्मदा-घाटी-बाँध को विनष्ट करके।

महेश सिह : लेकिन यह कैसे सम्भव है ?

बलबीर सिह : सम्भव है, सब कुछ सम्भव है। जब तक विश्व में अर्थ का महत्त्व है और रहेगा, तब तक व्यक्ति चाँदी के चन्द टुकड़ों में बिकता है और बिकता रहेगा।

महेश सिंह : समझ गया, सब कुछ समझ गया।

बलबीर सिह : वीरेश सिंह !

वीरेश सिह : जी।

बलबीर सिंह : इन्हें जाकर बीस हजार रुपया दे दीजिये और हरीचन्दजी, आप भी दस हजार रुपया ले लीजिये तथा यहाँ से और भी आदमी सिरोही ले जाइये और जाकर सहकारी-उद्योग तथा सहकारी-खेती को असफल बनाइये।

हरीचंद : जैसी आज्ञा।

(बलबीरसिंह के सिवा सभी का प्रस्थान। वह विचार-मग्न है। प्रियंवदा और ललितांगी का प्रवेश)

ललितांगी : आज इतना सूर्य चढ़ गया और अभी तक आपके घाव की पट्टी नहीं बदली गयी। पता नहीं, सुबह-सुबह से कौन-से काम में लग जाते हैं। काम के साथ-साथ आदमी अपने शरीर का भी तो ध्यान रखता है।

बलबीर सिह : शरीर पर ध्यान रखने का उत्तरदायित्व मैंने, जब से तुम आयी हो तभी से, तुम पर छोड़ दिया है।

ललितांगी : दीदी के सामने ऐसी बेहूदी बातें करते आपको लज्जा नहीं आती ?

बलवीर सिंह : खैर, छोड़ो इन बातों को। आज मैं प्रियंवदाजी के सामने एक विशेष प्रस्ताव उपस्थित करना चाहता हूँ।

प्रियंवदा : कहिये, कौन-सा प्रस्ताव है ?

बलवीर सिंह : आज का प्रस्ताव देश के भविष्य से सम्बन्ध रखता है।

ललितांगी : बिना लम्बी-चौड़ी भूमिका बाँधे कह दीजिये न, जो कुछ कहना चाहते हैं।

बलवीर सिंह : बात अधिक महत्त्वपूर्ण और गम्भीर है। इसलिए सबसे पहले मैं उसके महत्त्व का प्रतिपादन करना चाहता था।

ललितांगी : आप स्वभाव से ही दीर्घसूत्री हैं। जरा-सी बात के लिए शब्दों का किला खड़ा करते हैं। लेकिन यह नहीं जानते कि जिस किले के गारे में ही शक्ति न हो, उस किले के बड़े-बड़े पत्थर भला कितने अधिक समय तक टिक सकेंगे।

प्रियंवदा : कहिये बलवीर सिंहजी ! मैं आपका प्रस्ताव सुनने को सहर्ष तैयार हूँ।

बलवीर सिंह : आप लोग साम्यवादी विचारधारा को स्वीकृत क्यों नहीं कर लेतीं ?

प्रियंवदा : लेकिन क्यों स्वीकृत कर लें, इसका पर्याप्त कारण क्या आप बता सकेंगे ?

बलवीर सिंह : अवश्य। हर दूरदर्शी और विवेकशील व्यक्ति भारत की वर्तमान परिस्थिति से यह सहज ही अन्दाज लगा सकता है कि यह गरीब और शोषित भारत भविष्य में एक-न-एक दिन साम्यवाद को अपनाकर रहेगा।

प्रियंवदा : लेकिन क्या आप बता सकेंगे, वह कौन-सी परिस्थिति है, जो देश को साम्यवाद की ओर ले जा रही है ?

बलवीर सिंह : वह परिस्थिति है—वर्तमान शिक्षा।

प्रियंवदा : आप इस परिस्थिति का स्पष्ट विवेचन करने का प्रयत्न करें, तो अधिक उत्तम होगा।

बलवीर सिंह : हमारे यहाँ का हर विश्वविद्यालय कार्ल मार्क्स के दर्शन को अपने यहाँ के पाठ्यक्रम मे स्थान दिये हुए है। अतः जो भी विश्वविद्यालय से स्नातक होकर निकलकर शोपणयुक्त समाज मे पदार्पण करता है, उसे इस शोपण से मुक्ति का एकमात्र उपाय साम्यवाद ही दिखाई देता है। अतः भारत का शिक्षित वर्ग साम्यवाद का प्रबल पक्षपाती हो गया है। आज भारत के शिक्षित व्यक्तियों की विचारधारा का विश्लेषण करने पर यह सहज ही आभास हो जाता है कि भारत कुछ ही वर्षों में साम्यवादी हो जायगा। हर देश का शिक्षित वर्ग उस देश का मस्तिष्क होता है। मस्तिष्क ही शरीर का संचालन करता है। जिस विचारधारा को मस्तिष्क ग्रहण कर लेता है, शरीर उसका स्वाभाविक रूप से अनुगमन करता है। हर देश के विश्वविद्यालय साम्यवाद को प्रोत्साहन देने में अपना सहयोग दे रहे हैं।

प्रियंवदा : लेकिन विश्वविद्यालय द्वारा दी जानेवाली शिक्षा अधूरी है।

बलवीर सिंह : यह कैसे हो सकता है ?

प्रियंवदा : हो नहीं सकता, बल्कि है।

बलवीर सिंह : कैसे ?

प्रियंवदा : पूँजीवाद का प्रतिवाद साम्यवाद है, यह तो आप मानते हैं न ?

बलवीर सिंह : अवश्य।

प्रियंवदा : साम्यवाद पूँजीवाद का प्रतिवाद है, युक्तिवाद नहीं। (Synthesis) और इन दोनों का युक्तिवाद सर्वोदय है। अतः जब तक कोई भी विश्वविद्यालय 'युक्तिवाद' की शिक्षा नहीं देते, तब तक 'वाद' और 'प्रतिवाद' की शिक्षा अधूरी है।

बलवीर सिंह : सर्वोदय भी कोई वाद है, जो पाठ्यक्रम में रखा जाय ?

प्रियंवदा : सर्वोदय यथार्थ में 'वाद' की श्रेणी से ऊपर उठकर जीवन-दर्शन का रूप ले चुका है।

बलवीर सिंह : सर्वोदय न तो कोई वाद है, और न कोई दर्शन। यही कारण है कि वह गरीबों को तो आकृष्ट कर सकता है, परन्तु शिक्षितों को नहीं। हमारे देश के एक हजार शिक्षित व्यक्ति में से केवल एक ही व्यक्ति 'सर्वोदय' नाम को जानता होगा और एक लाख मे से एक व्यक्ति ही सर्वोदय के कार्यक्रम को समझता होगा और उस विचारधारा को कार्यरूप मे परिणत करनेवालों की सख्या तो और भी नगण्य है। फिर भी क्या आप यह कह सकती हैं कि 'सर्वोदय' सफल होगा ?

प्रियंवदा : सर्वोदय सफल होगा और अवश्य होगा। यदि आपमें समाज की चेतना को अनुभव करने की क्षमता होती, तो आप यह प्रश्न कभी उत्पन्न न करते। भूदान, सम्पत्तिदान और ग्रामदान द्वारा जन मानस में क्रान्ति मच गयी है। आप समाज की चेतना को ऑकड़ों और तर्क से समझना चाहते हैं। जीवन का विकास साख्यिक योग का प्रतिफल नहीं है, जो कि अंधे तर्क द्वारा समझा जा सके। जीवन का विकास जीवन में निहित प्राण-शक्ति की क्षमता का प्रतिफल है, जो हर क्षण जीवन को स्फूर्ति, उत्साह और नवीनता देती है। जीवन में निहित इस प्रगतिशील क्षमता को आँकडों द्वारा नहीं नापा जा सकता और न अन्धे तर्क के द्वारा उसे समझा जा सकता है, उसे तो केवल अनुभव किया जा सकता है।

बलवीर सिंह : कुछ भी हो; लेकिन यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि किसी भी वाद की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि लोग उसे जानें।

प्रियंवदा : आपके कथन से मैं पूर्णतः असहमत हूँ। किसी भी आन्दोलन की सफलता उसे जाननेवालों की सख्या पर निर्भर नहीं है, बल्कि उस अभियान में तन्मय उन कर्मवीरों की तन्मयता और साधना पर

निर्भर है, जो अपने रुधिर और चेतना से उसे प्राण-शक्ति देते हैं। यह सबसे बड़ा प्रमाण है कि रूस की बोल्शेविक क्रान्ति के समय साम्यवाद को समझनेवालों की संख्या नगण्य थी।

बलबीर सिंह : यदि आपमें दूरदर्शिता है, तो आप देख सकेंगी कि कुछ ही वर्षों में साम्यवाद की प्रचण्ड धारा सम्पूर्ण विश्व को आत्मसात् कर लेगी। साम्यवाद तो एक ऐतिहासिक प्रवाह है, जो अरबों रुपये का साहित्य वितरित करने पर भी नहीं रुक सकता। वह विश्व के हर देश में विजय-दुन्दुभि बजाते हुए निरन्तर प्रगति-पथ पर बढ़ रहा है।

प्रियंवदा : बलबीर सिंहजी, आप यहीं तो भूल कर रहे हैं। साम्यवाद को रोकने के लिए जिस साहित्य का प्रकाशन किया जा रहा है, वह साहित्य नहीं, बल्कि राजनीति का कूड़ा-कचरा है, जिसे जलाने से छल-कपट और मिथ्याचार की गन्ध आती है। सत्-साहित्य में असीम शक्तियाँ भरी पड़ी हैं। वह विश्व-मानस को उद्वेलित कर उसकी चेतना-शक्ति को विभासित करता हुआ उसे असत् के विध्वंस और सत् को आलोकित करने की ओर प्रेरित करता है। विश्व की बड़ी-बड़ी क्रान्तियाँ साहित्य ने ही की हैं। यह बड़े दुःख की बात है कि विश्व के बड़े-बड़े राष्ट्र साम्यवाद को रोकने के लिए अरबों रुपया खर्च कर रहे हैं, फिर भी साम्यवाद की प्रगति को रोक नहीं पा रहे हैं। साम्यवाद को राजनीति की गन्दगी से नहीं रोका जा सकता। वह तो युग का सत्य लेकर प्रकट हुआ है। सत्य को असत्य कभी नहीं ढँक पाया और न ढँक पायेगा। उसका महान् सन्देश है 'मानव को शोषण से मुक्त करो' और इस सन्देश का प्रभाव सम्पूर्ण विश्व पर हुआ। विश्व के हर देश ने साम्यवाद की प्रथम सीढ़ी को किसी-न-किसी रूप में ग्रहण किया। यहाँ तक कि अमेरिका तक ने उत्पादन के लाभ में श्रमजीवी को हिस्सा दिया है। साम्यवाद एक विशेष सत्य का उद्घाटन करता हुआ भी कुहू के सघन तम में भटक

रहा है। वह अभी भी सृष्टि के कण-कण मे व्याप्त सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप विश्वात्मा की अनुभूति करने में असमर्थ है। अतः आज एक ऐसे दर्शन की आवश्यकता है, जो साम्यवाद द्वारा उद्घाटित विशेष सत्य को हृदयंगम कर उस महान् सत्य का उद्घाटन करे, जो मानव आत्मा को परिष्कृत कर सके। और वह दर्शन है, सर्वोदय। विश्व का हर देश साम्यवाद को रोकना चाहता है, परन्तु दुःख की बात है कि वह अभी तक सर्वोदय का मूल्यांकन नहीं कर सका।

(स्वामी महामूर्खानन्दजी का प्रवेश)

स्वामी महामूर्खानन्द : बेटियो ! अभी तक तुम लोग यहीं बैठी हो ! प्रतिदिन के अटल कार्यक्रम मे यह परिवर्तन कैसा ! चम्पानगरी के सैकड़ो दीन दुःखी तुम्हारे लिए आँखें विछाये होंगे।

प्रियंवदा : जरा बाते आरम्भ हो गयी थीं स्वामीजी।

स्वामी महामूर्खानन्द : सो तो सुन ही रहा हूँ। बेटी ! केवल शब्दों द्वारा दिये गये प्रमाण कभी भी स्थायी और प्रभावकारी नहीं हुए। यदि प्रमाण ही देना है, तो शब्द-चेतना को मूर्तरूप देकर उसे अपने रुधिर से सींचो और फिर उसका अपनी प्राण-शक्ति से अभिषेक कर उसे प्राणवान् बनाकर ऐसा प्रमाण उपस्थित करो, जो जीवनमय, स्थायी और अमर होगा तथा अपने में निहित महान् सन्देश युगों-युगों तक निनादित करे। खैर, छोडो इन सब बातों को। मैं एक शुभ सवाद लेकर आया हूँ, जिसे सुनते ही तुम लोग आनन्द से विभोर हो जाओगी।

प्रियंवदा : (आतुर होकर) शीघ्र सुनाइये स्वामीजी ! शीघ्र।

स्वामी महामूर्खानन्द : चम्पानगरी का प्रधान धन-कुबेर सेठ कालूमल ने अपनी समस्त धन-राशि तथा चल और अचल सम्पत्ति नगर की उन्नति के लिए दान कर दी। इस आशय की घोषणा उसने स्वतः

अपने 'रोगी तथा अपंगु सहायता-केन्द्र' मे आकर सैकड़ो व्यक्तियो के सामने की।

प्रियंवदा : (आनन्दित होते हुए) तो हमारा प्रयास सफल हो गया !

ललितांगी : स्वामीजी, क्या यह सत्य है ?

स्वामी महामूर्खानन्द : हाँ, सत्य है।

प्रियंवदा : फिर भी मुझे विश्वास क्यो नहीं होता ?

स्वामी महामूर्खानन्द : आनन्दातिरेक के कारण। जब मानव अपने प्रयास को मूर्तिमान् हो धरा पर पल्लवित होता देखता है, तो वह आनन्द में विभोर हो जाता है, उसकी सृजन-वृत्ति गौरवान्वित हो उठती है। यही तो है कर्म का प्रेरणा-स्थल और सृष्टि का रहस्य।

बलबीर सिंह : (आश्चर्य से) क्या वास्तव में सेठ कालूमल ने सर्वस्व दान कर दिया ?

स्वामी महामूर्खानन्द : क्यों ? इसमें आपको आश्चर्य क्यों हो रहा है ? इसीलिए न कि जिस कार्य को तलवार की नोक नहीं कर सकी, उस कार्य को प्रेम और करुणा ने सहज ही कर दिखाया।

बलबीर सिंह : जी हाँ !

स्वामी महामूर्खानन्द : यदि आप लोग प्रेम और करुणा की महान् शक्तियों से परिचित होते, तो आपको इसमें रंचमात्र भी आश्चर्य न होता। मानव की शुद्ध-बुद्ध आत्मा अभी इतनी पतित नहीं हुई है बलबीर सिंह कि वह तुम्हारे समान उपकार का अपकार से और प्रेम का घृणा से बदला चुकाये।

बलबीर सिंह : (तुनककर) स्वामीजी !

स्वामी महामूर्खानन्द : चलो बेटियो, हमें अभी चम्पानगरी चलना है।

(सभी जाते हैं)

पटाक्षेप

●

तृतीय अंक

प्रथम दृश्य

[स्थान : सिरोही का शयनागार । समय : उषःकाल ।
कोकिला सो रही है और स्वप्न देख रही है ।]

मधुसूदन : (कोकिला का हाथ पकड़ते हुए) कोकिला, मैं देखता हूँ कि तुम एकान्त में उदास हो जाती हो । एकान्त में मुझसे बातें करने में भी झिझकती हो । मेरे इतने समीप रहते हुए भी कितनी अधिक दूर रहती हो !

कोकिला : (पलक झुकाये) भक्त अपने आराध्य से दूर रह नहीं सकता प्रधानवर ! वह तो सदा उनके चरणों पर अपनी अर्चना के सुमन अर्पित करता है । (कोकिला के आँसू गिरकर मधुसूदन के चरणों में गिर पड़ते हैं ।)

मधुसूदन : यह क्या ! तुम रो रही हो कोकिला !

कोकिला : नहीं तो !

मधुसूदन : तो फिर ये तुम्हारे मुखचन्द्र पर जल-बिन्दु कहाँ से आये !

कोकिला : ये तो हृदय-कानन के वे प्रसून हैं, जो प्राणेश्वर के चरणों में अर्पित करने के लिए चुने गये थे ।

मधुसूदन : कोकिला, चलो मेरे साथ ।

कोकिला : कहाँ !

मधुसूदन : जहाँ हम सदा साथ रह सकें ।

कोकिला : चलिये । (दोनों जाते हैं ।)

मधुसूदन : अरे, यह गहरी खाई ! अवरोध ! ठहरो, मैं उस पार जाकर तुम्हें भी उस पार कर लूँगा।

(मधुसूदन खाई पार कर जाता है। खाई अधिक चौड़ी होती जाती है।)

मधुसूदन : कोकिला !

कोकिला : मधुसूदन !

मधुसूदन : कोकिला ! (दूर हटता जाता है।)

कोकिला : मधुसूदन ! मधुसूदन ! मधुसूदन ! (गिरकर रोने लगती है)

(नीलम का प्रवेश)

नीलम : (कोकिला को जगाते हुए) कोकिला ! कोकिला ! क्यों री, रो क्यों रही हो ? क्या हुआ ?

(कोकिला उठकर बैठती है। नीलम उसकी आँखों के आँसू पोंछती है।)

नीलम : क्यों रो रही हो बहन कोकिला ? कुछ तो बताओ।

कोकिला : क्या बताऊँ। जिसके जीवन की दीर्घ कहानी आँसुओं मे डूब गयी हो, सूर्योदय के पहले ही जिसे सन्ध्या ने निमत्रण दे दिया हो, बाहर आने के पूर्व ही पाले ने जिस उपवन को नष्ट कर दिया हो, भला वह क्या बताये ? (दीर्घ श्वास लेते हुए) क्या है उसके पास बताने को ?

नीलम : यह मैं क्या सुन रही हूँ ? हिमगिरि के अन्तस्तल में भी ऐसी विकराल ज्वाला छिपी हुई थी !

कोकिला : नारी होकर भी नारी के हृदय को नहीं समझती ? अदृश्य नटखट नटी ने नारी-हृदय की रचना प्रेम और सरसता के ताने-बाने से की है। उसके हृदयाकाश में सदा प्रेम की आवाज गूँजती है। किन्तु वही जब शून्य से टकराती है, तब हाहाकार मे बदल जाती है। हाहाकार ! चीत्कार ! प्रभंजन ! आह और आँसू ! दाह ! ताप और जलन !

नीलम : कोकिला, आज तुम कैसी बातें कर रही हो ! तुम तो नारी जाति

की शिरोमणि हो। जिसका नाम जिह्वा पर आते ही हर नारी का मस्तक गर्व से खिंच जाता है, उसे यह क्षुद्रता शोभा नहीं देती।

कोकिला : जो एकाकी जीवन का संबल है, उसे क्षुद्रता कह रही हो नीलम! हाहाकार के आर्तनाद से एकाकी जीवन जब अस्वस्थ हो जाता है और जब उसे अभाव और सूनापन का ज्वर ग्रस लेता है, तब जीवन-सरिता में तूफान आ जाता है। प्रलय के काले-काले भयंकर पयोद गर्जते-तर्जते हैं, दामिनी बार-बार कौंध जाती है। उमड़-घुमड़, गर्जन-तर्जन का व्यापार दीर्घ काल तक चलता रहता है। फिर कसक, टीस, हाहाकार नयन-पथ से निकल जाता है। श्याम घन छट जाते हैं। हृदयाकाश निर्मल हो जाता है। मन स्वस्थ हो जाता है।

नीलम : एक बात पूछूँ बहन?

कोकिला : पूछो।

नीलम : प्रधानवर के इतने समीप होते हुए भी उनसे अलगाव क्यों रखती हो?

कोकिला : जानकर भी अनजानी क्यों बनती हो? क्या तुम्हें यह नहीं मालूम कि वे मेरे नहीं, प्रियंवदा के हैं।

नीलम : यह तो ज्ञात है, परन्तु वे तुम्हारे भी तो हो सकते हैं।

कोकिला : नहीं नीलम, मुझे नहीं चाहिए। वे मेरे पास प्रियवदा की धरोहर हैं। मैं तो केवल उन दोनों को प्रसन्न देखना चाहती हूँ।

नीलम : तो क्या तुम उनसे प्रेम नहीं करती?

कोकिला : वे तो मेरे प्राण हैं। वे मेरे मानस के दिनकर हैं, जिनकी किरणें मेरे तन के प्रत्येक जीवाणु में प्रवेश कर प्राणवायु का सचालन करती हैं। मैं तो अपने देवाधिदेव की उपासिकामात्र हूँ। अपने अस्तित्व को श्रीचरणों मे न्योछावर कर चुकी हूँ।

नीलम : प्रेम की तृप्ति उपासनामात्र से सम्भव नहीं। प्रेम का स्वभाव सापेक्ष है। वह प्रेमी से कुछ अपेक्षा रखता है।

कोकिला : यह तो बहुत ही स्थूल प्रेम की व्याख्या है बहन ! प्रेम को किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं होती। उसमें तो सदा बलिदान और त्याग का ओज रहता है। वह सदा त्याग की निर्मल कांति से दीप्तिमान् रहता है। प्रेम की स्निग्धता त्याग की आभा का परिणाम है। प्रेमी अपने अस्तित्व का त्याग करके ही निर्मल प्रेम की आध्यात्मिक अनुभूति का रसास्वादन करता है। वह अपने अहं का बलिदान कर देता है। वह अपना सर्वस्व निछावर कर देता है। भौतिकता के त्याग के पश्चात् ही निर्मल प्रेम के दर्शन होते हैं। भौतिक जगत् से परे आध्यात्मिक जगत् है। प्रेम उसी आध्यात्मिक जगत् के कल्पवृक्ष का सौरभमय पुष्प है। यह प्रेम ही तो भौतिक जगत् का आधार है, जो उसे जीवन देता है। प्रेम व्यक्ति को भौतिक जगत् से उठाकर आध्यात्मिक जगत् मे ले जाता है, जहाँ आत्मा की एकता है। वहाँ द्वैत नहीं है। मैंने वही प्रेमरूपी चिन्तामणि पा लिया है बहन ! अब मुझे किसी अन्य वस्तु की अपेक्षा नहीं है।

नीलम : बहन कोकिला, प्रेम के क्षेत्र में भी तुम अद्वितीय हो। यहाँ भी तुम मानवी नहीं, देवी हो। त्याग की साक्षात् मूर्ति ! दूसरों को आनन्द देने के लिए जीवनव्यापी विरह को स्वतः गले लगा लिया। अमृत सबको दे स्वतः गरल-पान कर लिया। तुम धन्य हो कोकिला ! तुम धन्य हो ! उठो, स्नान करो। (दोनों जाती हैं)

पटाक्षेप

द्वितीय दृश्य

[स्थान : नर्मदा-घाटी बाँध। समय : रात्रि। बाँध-रक्षक-दल के दो व्यक्ति आपस में वार्तालाप कर रहे हैं।]

चन्द्रधर : अरे, तुमने कुछ सुना गणेश ?

गणेश : क्या ? मैंने तो अभी कुछ नहीं सुना।

चन्द्रधर : सुना है, सर्वोदयपुरी से एक दल भिलाई और दुर्गापुर इस्पात के कारखानों के अवलोकनार्थ गया है।

गणेश : हाँ दादा, गया तो है।

चन्द्रधर : लेकिन भिलाई और दुर्गापुर सर्वोदयपुरीवालों को क्या दे देंगे ! यह तो केवल समय का दुरुपयोग है।

गणेश : ऐसा मत सोचो दादा। भिलाई और दुर्गापुर के कारखाने हमें बहुत कुछ दे सकते हैं।

चन्द्रधर : क्या दे सकते हैं ! मैं भी सुनूँ जरा।

गणेश : भिलाई और दुर्गापुर के इस्पात कारखाने भारत के उद्योग और टेकनीक क्षेत्र में क्रान्ति लेकर आये हैं। देश का जीवन-स्तर दिनों-दिन बढ़ रहा है। अतः हमें अपना उत्पादन द्रुतगति से तीव्र करना होगा। उसके लिए हमें विश्व की आधुनिकतम टेकनीक से परिचित होना आवश्यक है।

चन्द्रधर : हाँ, ठीक कहते हो। हर देश को उत्पादन तो बढ़ाना ही चाहिए। सुना है और भी कहीं आगे जायेंगे।

गणेश : हाँ, वहाँ से भारत का सबसे बड़ा बाँध भाखडा-नागल देखने जायँगे।

चन्द्रधर : अरे ! सुन जरा, कैसी खटपट की आवाज आ रही है।

(दोनों सुनते हैं।)

गणेश : नहीं दादा, कुछ नहीं है।

चन्द्रधर : न होगा। शायद मुझे भ्रम हो गया। रात्रि मे जरा भी खटपट की आवाज आयी कि मैं सतर्क हो जाता हूँ। इस बाँध की मैं थोड़ी-सी भी हानि नहीं देख सकता। इसे हम लोगों ने पाँच वर्ष के कठिन परिश्रम से बाँधा है। इसमें गारा नहीं, हमारा रक्त लगा है।

गणेश : लेकिन दादा, इसने दिया भी खूब ! सबको आनन्दित कर दिया।

चन्द्रधर : तभी तो गणेश, जब मैं इस बाँध को देखता हूँ, तो मेरा हृदय

पुलकित हो उठता है और मैं आनन्द से उसी प्रकार विभोर हो जाता हूँ, जिस प्रकार एक वृद्ध पिता अपने उस सुपुत्र को देखकर आनन्द से विभोर हो जाता है, जिसने परिवार के भरण-पोषण का गुरुतर भार अपने कन्धों पर ले रखा हो और उसे समुचित ढंग से निभा रहा हो। हम बूढ़ों और बेवसों का सहारा मधुसूदन पता नहीं, कब लौटेंगे।

गणेश : दादा, वे तो अब सिरोही में ग्राम-राज्य स्थापित कर ही लौटेंगे।

चन्द्रधर : मैं बूढ़ा हूँ और सन्तानहीन हूँ। फिर भी मैं भविष्य के प्रति चिंतित नहीं हूँ।

गणेश : इसका कारण ?

चन्द्रधर : कारण पूछते हो ! कारण तो सभी कोई जानते हैं। जिसे मधुसूदन जैसा बेटा मिल गया हो, उसे फिर किस बेटे की जरूरत है। लगता है, मेरा अपना बेटा दूर गया है, शीघ्र ही आनेवाला है। वह मुझे बहुत प्रेम करता, बहुत चाहता है। मैं तो अब इन बूढ़ी आँखों से उसकी जोडी देखना चाहता हूँ।

गणेश : हाँ। सर्वोदयपुरी का हर नागरिक यही चाहता है।

चन्द्रधर : लेकिन बेटा गणेश ! तू मान या न मान। तू तो उस समय था नहीं यहाँ। मधुसूदन ने इस बाँध के निर्माण में बहुत ही धैर्य और साहस का परिचय दिया है। पाँच वर्षों तक लोगों के धैर्य और उत्साह को उसने बनाये रखा। स्वतः कंकरीट ढोयी और बाँध बाँधा। साथ ही हजारों व्यक्तियों की सुख-सुविधा का पूरा-पूरा ध्यान रखा। काम समाप्त होने पर घर-घर जाकर उनका दुख-दर्द पूछता था और अपनी मधुर वाणी से उनके श्रम को हरता था। गणेश ! सुनी तूने वह आवाज ?

गणेश : हाँ दादा, अब की तो मैंने भी सुना है। ठहरो, मैं नीचे जाकर देखता हूँ।

चन्द्रधर : नहीं। पहले सीटी बजाकर सबको बुला लो और नीचेवाले

को सतर्क कर दो । फिर चलो । (गणेश सीटी बजाता है ।) उठा मेरी लाठी और चल ।

(दोनों नीचे की ओर जाते हैं । नीचे हलचल मच जाती है । दौड़धूप के बाद दो व्यक्ति पकड़े जाते हैं और बन्दी बना लिये जाते हैं ।)

चन्द्रधर : कौन हो तुम लोग ?

गणेश : (प्रकाश ऊपर उठाकर) अरे, ये तो महेश सिंह हैं ।

चन्द्रधर : कौन महेश सिंह ?

गणेश : वही बलवीर सिंह का साथी, जो सर्वोदयपुरी में रह चुका है । (प्रकाश से देखकर) और यह वीरेश सिंह हैं ।

चन्द्रधर : क्या कर रहे थे ये लोग ?

गणेश : दीवाल खोदकर उसमें बम रखा था और उसमें आग लगाने ही वाले थे कि सब लोग पहुँच गये ।

चन्द्रधर : धन्य है ईश्वर को, जिसकी असीम कृपा ने बाँध को नष्ट होने से बचा लिया । (दस्युओं से) क्यों भाई, तुम लोग बाँध को क्यों नष्ट करना चाहते हो ?

महेश सिंह : छल-कपट के अन्त के लिए ।

चन्द्रधर : कैसा छल-कपट ?

महेश सिंह : भूदान, संपत्तिदान, ग्रामदान और पात्रदान का उद्देश्य क्या है ? भारत के नागरिकों को बहकावे में डालना, जिससे भारत में साम्यवाद का विकास अवरुद्ध हो जाय । सर्वोदयपुरी का कार्य-क्रम भी केवल इसी उद्देश्य को लेकर चल रहा है ।

चन्द्रधर : भूदान, सम्पत्तिदान, ग्रामदान और पात्रदान का उद्देश्य इतना थोथा नहीं है । यह तो सन्त विनोबा द्वारा आरम्भ किया गया वह महायज्ञ है, जिसमें अपने सर्वस्व या उसके अंश की आहुति देकर भारत के लाखों व्यक्तियों ने, अर्थ के काले नाग को, जो कि आत्मा को ढँककर बैठा है, मार भगाया है । आज जन-मानस में त्याग की लहर दौड़ गयी है । इस महायज्ञ से विश्व का

वातावरण बदल रहा है। भूली-भटकी आत्माएँ प्रकाश पा रही हैं। लोभ-मोह का अन्धकार तिल-तिलकर गल रहा है। विश्व की सुख-शान्ति के लिए मानव-निर्माण का विश्वव्यापी कार्यक्रम चल रहा है। सन्त विनोबा के चरणों में बैठकर मनुष्य मनुष्यता का पहला पाठ पढ़ रहा है। वह लेने के स्थान पर देना सीख रहा है। संग्रह का स्थान त्याग ले रहा है।

वीरेश सिंह : छोड़िये दादाजी, इन बातों को। ये देखिये (नोटों की गड्डियाँ दिखाता है।)

चन्द्रधर : आपका तात्पर्य ?

वीरेश सिंह : तात्पर्य स्पष्ट है। यदि आप लोग हमें छोड़ दें, तो हम आपको दस हजार रुपये दे सकते हैं।

चन्द्रधर : बस !

वीरेश सिंह : बोलिये कितना चाहिए ? पन्द्रह हजार, बीस हजार ?

चन्द्रधर : और कुछ आगे ?

वीरेश सिंह : क्या यह रकम कम है ? बीस हजार रुपये !

चन्द्रधर : नहीं, बहुत बडी रकम है। इस रकम से तुम जैसे बीस व्यक्ति खरीदे जा सकते हैं, परन्तु सर्वोदयपुरी का एक बालक भी बीस हजार रुपयों को बीस कौड़ियों के समान नगण्य समझेगा।

महेश सिंह : घर आयी लक्ष्मी का अपमान नहीं करते दादा !

चन्द्रधर : मुझे उपदेश मत दो महेश सिंह। अब मैं बूढ़ा हो चुका हूँ। मुझे तुम्हारे उपदेश की आवश्यकता नहीं है।

वीरेश सिंह : महेश सिंह ठीक ही तो कह रहा है। जीवन बिना पैसे के एक कदम आगे नहीं बढ़ रहा है। आज का प्रधान धर्म पैसा है पैसा। यदि पास में पैसा है, तो तुम सभ्य हो, सुशिक्षित हो, समाज तुम्हारी आरती उतारेगा। और यदि तुम्हारे पास पैसा नहीं है, तो संसार तुम्हें दुत्कारेगा, घृणा करेगा, विश्व नरक के समान दारुण व्यथाओं से परिपूर्ण मालूम होगा।

चन्द्रधर : ठीक है। अर्थप्रधान समाज मे अर्थ की प्रधानता होती है। अर्थ अर्थ है। वह जीवन का सर्वस्व कभी नहीं हो सकता। अर्थ सदा जीवन का साधन ही रहेगा, साध्य नहीं। परन्तु आज तुम जैसों ने अर्थ को ही जीवन का चरम लक्ष्य स्वीकार कर लिया है। मैं देख रहा हूँ कि आज अर्थ पग-पग पर मानवता की हत्या कर रहा है। इस दुष्ट ने माँ को बेटे से, भाई को भाई से, बाप को बेटे से और बहन को भाई तथा पति को पत्नी से दूर किया है। जिन हृदयो मे प्रेम की भागीरथी उछालें मारकर उमंगती, पुलकित हो प्रवाहित होती थी, आज उन्हीं हृदयों में ज्वाला धधकती है, जिससे रक्त, मांस और मज्जा के जलने की गन्ध आती है। अर्थ ने मानवता को चिता-अर्पित कर जीवन को कलह और विषपूर्ण बना दिया है।

महेश सिंह : ये आदर्शपूर्ण बातें जीवन के यथार्थ से टकराकर चूर्ण-चूर्ण हो जाती हैं। आदर्श को लेकर जीवन में प्रवेश करनेवाला नवयुवक जब जीवन की एक साधारण-सी गुत्थी को सुलझाने मे आदर्शरूपी अस्त्र को निरर्थक पाता है, तब उसे वहीं छोड़ अर्थ का अवलम्ब लेता है। फिर अर्थ उसके जीवन मे प्रातःकालीन मार्तण्ड की कोमल किरणों के समान प्रवेश करता है, जो प्रवेश करते ही उसके जीवन को प्रकाश से जगमगा देता है।

चन्द्रधर : यह सब तुम उनके लिए कह रहे हो महेशसिंह, जिन्होंने जीवन को कभी समझने का प्रयत्न ही नहीं किया है। यह सच है कि आज के जीवन मे अर्थ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। लेकिन यह असगत है। जीवन का उद्देश्य तो निरन्तर सत्य का अन्वेषण करना है, अर्थ की साधना नहीं। अर्थप्रधान-समाज को बदलकर हमें मानव को अर्थ की मरुमरीचिका से मुक्त करना है। भूदान और सम्पत्तिदान अर्थ के अस्तित्व को समाप्त करने के ही प्रयास हैं। महेशसिंह, तुम मनुष्य बनने का प्रयत्न क्यों नहीं करते ?

महेशसिंह : मनुष्य बनने में मिलनेवाला ही क्या है ? अपमान, भुखमरी,

घृणा, बेकारी और तबाही ! ये पैसेवालों का समाज ही कुछ ऐसा है। उदर-पोषण के लिए काम माँगने पर उत्तर में दुत्कार मिलती है। भूख से छटपटाते बच्चों के लिए रोटी का एक टुकड़ा माँगो, तो पैर की ठोकर मिलती है ! आज जिसके सामने हजारों व्यक्ति गिड़गिड़ा-कर प्राणों की भिक्षा माँगते, जिसे देखते ही भय से लोग काँपने लगते हैं, हजारों शीश झुक जाते हैं, उसे कहते हो कि वह छोटे-मोटे कीड़े-मकोड़े के सामने शीश झुकाये।

चन्द्रधर : यहीं तो भूल करते हो। उन्हें कीड़े-मकोड़े क्यों कहते हो ? आखिर वे भी तो मानव ही हैं। उनमें भी उसी आत्मा का प्रकाश है, जिसका कि हममें और तुममें है। फिर नीच-ऊँच का भेद क्यों ? छूत-अछूत का भेद क्यों ?

महेश सिंह : आप नहीं जानते दादाजी, ये पूँजीपति कितने नीच होते हैं ! ये लोग कितने दूषित साधनों से पैसे का संग्रह करते हैं, इसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते। इनमें मनुष्यता होती ही नहीं। फिर इन्हें मनुष्य क्यों कहा जाय ?

चन्द्रधर : यदि तुम गहराई से सोचो, तो देखोगे कि इसमें इन निरीह व्यक्तियों का कोई दोष नहीं है। ऐसी व्यवस्था में, जिसमें व्यक्ति और उसकी सन्तान का भविष्य अनिश्चित हो, धन-संग्रह आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य हो जाता है। पूँजीवादी व्यवस्था में व्यक्ति का मूल्यांकन उसमें निहित मनुष्यता, योग्यता अथवा प्रतिभा के आधार पर नहीं, बल्कि अर्थ के आधार पर होता है। मनुष्यता, योग्यता और प्रतिभा अर्थ की अनुगामिनी बनकर चलती हैं। दूसरी ओर योग्यता और प्रतिभा बिना अर्थ के उसी प्रकार नष्ट-भ्रष्ट हो जाती हैं, जिस प्रकार बिना मूल की लताएँ। अर्थ का अभाव जीवन को वह मरुभूमि बना देता है, जिसमें ऋतुराज वसन्त की शीतल, मन्द, सुगन्ध समीर के स्थान पर ग्रीष्म का भीषण ताप लिये पल-पल झुलसानेवाली झंझा चलती है। अब तुम ही कहो, जब अर्थ जीवन का वह महत्त्व-

पूर्ण उपकरण बन चुका हो, जिसके बिना जीवन दूभर हो जाता हो, फिर व्यक्ति अर्थ का संग्रह क्यों न करे ?

महेश सिंह : धन-संग्रह के लिए आपने तो व्यक्ति के स्थान पर व्यवस्था को दोषी ठहराया है।

चन्द्रधर : महेश सिंह, मैंने तो वह कहा है, जो वास्तविक तथ्य है। हमें सदा यथार्थ तथ्य का उद्घाटन करना चाहिए, फिर उसके लिए चाहे व्यक्ति उत्तरदायी हो अथवा व्यवस्था। जन-नायकों का कर्तव्य है कि वे जन-मानस को समझें और तथ्य पर पर्दा डालने अथवा उसे तोडने-मरोडने की अपेक्षा उसका समाधान प्रस्तुत करें। जिस देश के राजनीतिज्ञ शतरंज के चतुर खिलाडियों के समान समस्याओं को हल करने के स्थान पर, उन्हें सदा एक नया मोड़ देने के आदी हो जाते हैं, उस देश की समस्याएँ समय के गर्भ में पलती और पनपती रहती हैं और एक ऐसा समय आता है, जब वे विकराल रूप धारण करके उभरती हैं। उनकी इस विकरालता में देश का जन-जीवन धू-धू कर जलने लगता है। अशान्ति का साम्राज्य छा जाता है। देश ताण्डव-भूमि बन जाता है। अतः उत्तम यही है कि हमें तथ्यों से भयभीत नहीं होना चाहिए। बल्कि उनका यथार्थ समाधान प्रस्तुत कर हमें जन-जीवन को अधिक आनन्दप्रद बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

महेश सिंह : लेकिन अब हम लोग क्या करें ? हमारे लिए सबके दरवाजे बन्द हो चुके हैं।

चन्द्रधर : भूल कर रहे हो महेश सिंह ! सर्वोदयपुरी का दरवाजा कभी किसीके लिए बन्द नहीं होता।

महेश सिंह : क्या मुझ जैसे अपराधी के लिए भी, जिसने तीन-तीन बार सर्वोदयपुरी को नष्ट-विनष्ट करने का प्रयत्न किया हो ?

चन्द्रधर : उसकी दृष्टि में अपराधी और साधारण व्यक्ति समान हैं, क्योंकि दोनों में ही वही शुद्ध-बुद्ध विश्वात्मा का प्रकाश है। जन्म से

कोई भी व्यक्ति अपराधी नहीं होता। आन्तरिक एवं वाह्य उलझनें उसे अपराध के पथ पर अग्रसर करती हैं। यदि उसकी समस्याएँ सुलझा दी जायँ, तो वह भी साधारण व्यक्ति के समान जीवन का आनन्द ग्रहण करने की क्षमता से सम्पन्न हो सकता है। तुम लोगो की उलझनें मुझसे छिपी नहीं हैं।

वीरेश सिह् : तो क्या आप हम लोगों की उलझनों को समझते हैं ?

चन्द्रधर : अवश्य ! तुम्हारी भी वही उलझन है, जो कि पूँजीवादी देश में वहुधा हर व्यक्ति की होती है।

महेश सिंह : उस उलझन को क्या व्यक्त करने की कृपा करेंगे ?

चन्द्रधर : अवश्य। तुम लोगों को भी स्वतः और सन्तान के अनिश्चित भविष्य की चिन्ता है। व्यक्ति अपना सम्पूर्ण जीवन दुःख-दैन्य की घटाओं से घिरा हुआ पग-पग ठोकर खाता, गिरता-उठता, रोता-बिलखता अपने परिवार के लिए रोटी जुटाने मे व्यतीत कर देता है। जीवनभर के हारे-थके सन्तप्त व्यक्ति की सन्ध्या और भी विकराल रूप धारण करके आती है। जीवन और मृत्यु के मध्य संघर्ष करते व्यक्ति के सामने पत्नी और सन्तान का अनिश्चित भविष्य, विशालकाय दानव के समान उपस्थित हो उसकी रग-रग को तोड़ चेतना को झुलसा देता है। अमृत-पुत्र सतरगी अभिनव वसुन्धरा पर अनन्त सौन्दर्य और अतुल वैभव के मध्य दीन-हीन और विकृति का जीवन-यापन कर अतृप्ति, असन्तोष और चिन्ता के महासागर में विलीन हो जाता है। यह भी कैसी विडम्बना है ! आनन्दस्वरूप दुःखस्वरूप बनकर रह जाता है। महेश सिंह ! अब जीवन को और गर्त में मत ढकेलो।

वीरेश सिह् : ठीक ही तो कह रहे हैं दादाजी ! उसके और उसकी सन्तान की भविष्य-सुरक्षा के सिवा और क्या चाहिए व्यक्ति को। इसके लिए हमें क्या करना होगा ?

चन्द्रधर : आप लोगों को सर्वोदयपुरी की नागरिकता ग्रहण करने के लिए

एक प्रार्थनापत्र ग्राम-परिषद् को देना होगा, जिसमें भूतकाल में किये गये अपराधों के पश्चात्ताप का भी उल्लेख होगा।

महेश सिंह : ठीक है दादाजी, हम लोग भी इस हिंसा के जीवन से ऊब चुके हैं। कल ही हम लोगों का प्रार्थना-पत्र ग्राम-परिषद् के सम्मुख उपस्थित करा दीजिये, तो बड़ी कृपा होगी।

चन्द्रधर : अभी आप लोग चलकर विश्राम कीजिये। रात्रि काफी शेष है। सुबह सब ठीक हो जायगा। (सबका प्रस्थान)

पटाक्षेप

तृतीय दृश्य

[स्थान : सिरोही। ग्रामोद्योग का काष्ठ-उद्योग विभाग।
सभी कर्मचारी कार्य कर रहे हैं।]

हरीचन्द : (श्रम-बिन्दुओं को पोंछते हुए) लकड़ी का सामान तैयार करने में बहुत परिश्रम पडता है।

जितेन्द्र : किसी भी वस्तु के निर्माण के लिए परिश्रम तो अनिवार्य ही है।

हरीचन्द : किन्तु परिश्रम में भी भेद होता है।

जितेन्द्र : श्रम श्रम है, उसमें भेद कैसा ?

हरीचन्द : किसी वस्तु के निर्माण में कम श्रम पड़ता है, जैसे कि चटाई या टोकरी बुनना। और किसी वस्तु के निर्माण में अधिक श्रम लगता है, जैसे कि टेबुल आदि लकडी का सामान बनाना।

जितेन्द्र : आपके मत से मैं सहमत नहीं हूँ। हो सकता है, आपके कथन में सत्यता हो।

हरीचन्द : खैर, छोडिये इसे। गत वर्ष के लाभांश का बँटवारा हुआ या नहीं ?

जितेन्द्र : वह तो हो चुका।

हरीचन्द : किस हिसाब से हुआ ?

जितेन्द्र : ग्रामोद्योग में लगे हुए जितने कर्मचारी हैं, सबको बराबर-बराबर लाभांश दिया गया।

हरीचन्द : बराबर बराबर दिया गया ?

जितेन्द्र : तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ?

हरीचन्द : नौसिखुए को भी उतना ही लाभाश दिया गया, जितना कि एक कुशल कारीगर को दिया गया। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है !

जितेन्द्र : अरे रतन सिह ! सुन भाई, यह हरीचन्द क्या कह रहा है ?

रतन सिह : अच्छा, आ रहा हूँ। (काम छोड़कर आता है) क्या कह रहा है ?

जितेन्द्र : कह रहा है कि एक नौसिखुए और कुशल कारीगर के लाभांश में अन्तर होना चाहिए।

रतन सिह : क्यों भाई हरीचन्द ! अन्तर क्यों होना चाहिए ?

हरीचन्द : एक नौसिखुआ कुशल कारीगर की अपेक्षा कम उत्पादन करता है। इसलिए उसे उतना लाभाश नहीं मिलना चाहिए।

जितेन्द्र : यह तो अभी पूँजीवादी ससार से आ रहा है, जहाँ मजदूर की कीमत चन्द पैसों से आँकी जाती है।

रतन सिह : भाई हरीचन्द ! यहाँ व्यक्ति के श्रम का मूल्यांकन होता है, व्यक्ति का नहीं। नौसिखुए ने आठ घण्टे काम किया और कुशल कारीगर ने भी आठ घण्टे काम किया। फिर उन्हे बराबर लाभांश क्यों न दिया जाय ?

हरीचन्द : यहाँ मान भी लिया जाय कि दोनों को बराबर लाभाश दिया जाय। लेकिन काष्ठ-उद्योग में लगे हुए कर्मचारियों के बराबर लाभांश बाँस-उद्योग के कर्मचारियों को नहीं दिया जा सकता।

रतन सिंह : असमानता और पक्षपात के संसार में पला प्राणी समानता

और आवश्यकता के सिद्धान्तों को कार्यरूप मे परिणत होते देख भौंचक्का रह जाता है।

जितेन्द्र : हाँ भाई हरीचन्द ! बराबर क्यों नहीं दिया जा सकता ?

हरीचन्द : बाँस-उद्योग से उतना लाभ नहीं होता, जितना कि काष्ठ-उद्योग से होता है। फिर दोनों उद्योगों में लगे कर्मचारियों को बराबर लाभांश कैसे दिया जा सकता है।

जितेन्द्र : आपको बताया जा चुका है कि लाभांश के बँटवारे का आधार श्रम है, न कि लाभ या उत्पादन। दोनों उद्योगों में लगे कर्मचारियों को आठ-आठ घंटे श्रम करना पड़ता है, इसलिए उन्हें समान लाभांश दिया जाता है।

हरीचन्द : मै बात स्पष्ट कह रहा हूँ, परन्तु आप लोगों की समझ मे नहीं आती।

रतन सिंह : हर सामान्य और असामान्य व्यक्ति सदा यही समझता है कि वह जिस मत का प्रतिपादन कर रहा है, वह स्पष्ट एवं तर्कयुक्त है। कुछ विवेकशील व्यक्ति अपने मत का उचित मूल्यांकन करने में शीघ्र ही सफल हो जाते हैं। परन्तु कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते हैं, जो अपनी मानसिक जड़ता में ही लिप्त रहते हैं। उन पर उनका मानसिक वातावरण सदा छाया रहता है। सृष्टि की हर वस्तु का मूल्यांकन बिना दूसरों के विचारों को महत्त्व दिये अपने ही सन्चित ज्ञान के आधार पर करते है। वे सदा अपने ही व्यक्तित्व की सीमा में आबद्ध रहते हैं। यदि कोई व्यक्ति उनसे असहमति प्रकट करता है, तो वे उदास या अशांत हो जाते अथवा झल्ला पड़ते हैं। लोग उनकी इन झल्लाहट पर हँसते हैं।

हरीचन्द : तो आप लोग मुझे अपने ही व्यक्तित्व की सीमा मे आबद्ध समझते हैं ?

जितेन्द्र : जो व्यक्ति सर्वोदय-मन्दिर में प्रवेश कर पवित्र एवं शुद्ध मानवता के दर्शन नहीं कर पा रहा हो और यहाँ भी वही असमता, भेद-भाव

और घृणा का वेतुका राग अलापे जा रहा हो, उसे सिवा मानसिक रोगी के और क्या कहा जा सकता है ?

रतन सिंह : भाई हरीचन्द ! पुराने विचारों की सीमाओं से ऊपर उठकर यदि तुम अपनी विवेक-दृष्टि से विश्व पर दृष्टिपात करो, तो देखोगे कि असमता, विद्वेष, भेद-भाव और घृणा से पीड़ित मानवता विकल हो छटपटा रही है। उसके जीवन में आनन्द लाने के लिए समता, मैत्री, करुणा और विश्व-बन्धुत्व की भावना की आवश्यकता है। फिर जीवन की सार्थकता मानवता की पूजा में ही है।

जितेन्द्र : चलो भाई रतन सिंह ! काम का नुकसान हो रहा है। हरीचन्द ! तुम्हें आत्मशुद्धि की आवश्यकता है।

(सब अपना-अपना कार्य करने लगते हैं)

पटाक्षेप

चतुर्थ दृश्य

[स्थान : सिरोही। सिरोही के जमींदार जगत सिंह के प्रासाद को उनकी चीनी मिल के हड़ताली घेरे खड़े हैं। भीड़ बहुत उत्तेजित है।]

एक श्रमिक : (तीव्र आवाज में) पूँजीपतियों का धन…

सभी : मजदूरों की कमाई है !

श्रमिक : मजदूरों की कमाई का…

सभी : बँटवारा हो !

श्रमिक : पूँजीपतियों का धन…

सभी : मजदूरों की कमाई है !

श्रमिक : मजदूरों की कमाई का…

सभी : बँटवारा हो !

दूसरा श्रमिक : बन्द करो ये नारेबाजी। केवल नारेबाजी से काम नहीं चलेगा।

तीसरा : (तीव्र आवाज में) जमींदार के महल में आग लगा दो।

चौथा : तोड़ दिया ! तोड़ दिया ! वह देखो, खिड़की तोड़ दी।

पाँचवाँ : ठीक है। ठीक है। आग लगा दो।

छठा : जल्दी करो ! जल्दी करो ! पुलिस आती होगी। फिर कुछ करने को नहीं मिलेगा।

सातवाँ : रास्ता दो। रास्ता दो। मधुसूदन आ रहे हैं।

आठवाँ : क्या मधुसूदन आ रहे हैं ?

सभी : मधुसूदन आ रहे हैं ! मधुसूदन आ रहे हैं !

(सभी रास्ता छोड देते हैं। मधुसूदन, डॉक्टर और कोकिला सामने के चबूतरे पर पहुँचते हैं।)

मधुसूदन : आप लोग शान्त होकर सुनें। मैं आप लोगों से कुछ प्रार्थना करना चाहता हूं।

सभी : सुनिये। सुनिये। मधुसूदन कुछ कह रहे हैं।

(सभी शान्त हो जाते हैं।)

मधुसूदन : बन्धुओ ! जीवन की समस्याएँ हिंसा से आज तक कभी नहीं सुलझी हैं। हिंसा जीवन का सिद्धान्त नहीं है। अहिंसा ही जीवन का सिद्धान्त है। हिंसा पर सदा अहिंसा की विजय होती आयी है। मृत्यु से घिरा रहकर भी जीवन इस धरा पर सदा पल्लवित हुआ है। संस्कृति, सभ्यता और मानव-संगठन अहिंसा के विकास की कहानी है। हम जो कुछ भी हैं, अहिंसा की देन हैं। अतः हमें अहिंसा का आश्रय नहीं छोड़ना चाहिए। मैं आप लोगों की समस्याओं से पूर्ण परिचित हूँ। व्यक्ति के हृदय को केवल प्रेम और सहयोग से ही जीता जा सकता है। जमींदार साहब भी मनुष्य हैं और मनुष्य मनुष्य की

समस्याओं और कठिनाइयों को समझता है। मैं आप लोगों से यह पूछता हूँ कि क्या आप लोगो को मुझ पर विश्वास है ?

सभी : हमें आप पर पूर्ण विश्वास है।

मधुसूदन : तो आप लोग अपने दो-तीन प्रतिनिधियों को भेजिये और सब लोग शान्तिपूर्वक प्रतीक्षा कीजिये।

कुछ श्रमिक : बाबू सोहन सिंह, आप ही जाकर चर्चा कीजिये।

मधुसूदन : कोकिला ! डाक्टर साहब को जमींदार साहब के सुपुत्र के स्वास्थ्य-परीक्षण के लिए अन्दर ले जाओ।

(कोकिला और डॉक्टर जाते हैं।)

मधुसूदन : तो बाबू सोहन सिंह ! आप लोग क्या चाहते हैं ?

सोहन सिंह : श्रमिकों के जीवन-धन होकर आप पूछते हैं कि श्रमिक क्या चाहते हैं ? श्रमिकों के हृदय के हर सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्पन्दन का प्रभाव जिसके आनन पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता हो, वही व्यक्ति यह पूछता है कि श्रमिक किस रोग से पीड़ित हैं ? श्रमिकों का इससे बढ़कर दुर्भाग्य और क्या हो सकता है ?

मधुसूदन : सोहन सिंहजी ! आप अतिशयोक्ति कर रहे हैं।

सोहन सिंह : हीरा को हीरा और पारस को पारस कहना अतिशयोक्ति नहीं है प्रधानजी।

मधुसूदन : मेरा तात्पर्य तो केवल आप लोगों की विशेष समस्या से परिचित होना था।

सोहन सिंह : हम भी वही चाहते हैं, जो विश्व का हर श्रमिक चाहता है। श्रमिकों के उत्पादन से हुए लाभ मे श्रमिको का भी हिस्सा होना चाहिए। इस वर्ष इस चीनी मिल में लगभग तीस लाख का लाभ हुआ है। हमें भी उसमें हिस्सा मिलना चाहिए। आप ही बताइये, इस महँगाई के समय सत्तर रुपये मात्र में एक परिवार का खर्च कैसे चल सकता है ?

मधुसूदन : आपकी माँग न्यायोचित है, परन्तु हमें शान्तिपूर्ण ढंग से उसे उपस्थित करना चाहिए।

(जगत सिंह, डॉक्टर और कोकिला का प्रवेश)

जगत सिंह : (मधुसूदन के चरणों पर गिरते हुए) आप वास्तव में महापुरुष हैं।

मधुसूदन : (उठाते हुए) कहिये, आपके सुपुत्र का स्वास्थ्य अब कैसा है ?

जगत सिंह : (आँसू पोंछते हुए) आप मेरे पुत्र के जीवन-दाता हैं। यदि आप डॉक्टर को साथ लेकर न आते, तो उसकी जीवन-लीला समाप्त ही थी।

मधुसूदन : जब मुझे ज्ञात हुआ कि आपका पुत्र जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा है और उत्तेजित भीड़ डॉक्टर को जाने का रास्ता नहीं दे रही है, तो यह मेरा कर्तव्य था कि डॉक्टर को आपके समीप पहुँचाया जाय। मैंने तो अपना कर्तव्य ही निभाया है, और कुछ नहीं।

जगत सिंह : आप जैसे सहृदय व्यक्तियों की प्रेरणा से ही तो जन-जीवन में शान्ति स्थापित हो रही है। मेरी आँखों के सामने से नास्तिकता का पर्दा उठ गया है। जब आँधी, तूफान और प्रलय की तिमिर-निशा के मध्य व्यक्ति ने अपना धैर्य खो दिया हो, तब दिव्य आत्माएँ आकर उसे अन्धकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से जीवन की ओर उन्मुख करती हैं। आपके आगमन से इस सदन के सभी अमंगल नष्ट हो गये। मुझे अपना स्वागत करने की आज्ञा दीजिये प्रवानवर !

मधुसूदन : जमींदार साहब ! इस जनता-जनार्दन का स्वागत हमें पहले करना चाहिए।

जगत सिंह : (जनता की ओर घूमकर) आज प्रेम, त्याग और सेवा

की प्रतिमूर्ति स्वयं मधुसूदनजी ने हमारे गृह मे पदार्पण किया है। उनके दर्शनमात्र से मेरा मोह-अन्धकार छिन्न-भिन्न हो चुका है। महापुरुषों के दर्शन से हृदय में श्रद्धा का वारिधि उमड़ पडता है और वह मानस के कल्मष को वहा ले जाता है। जीवन में नवीन चेतना, नवीन स्फूर्ति और नवीन भावनाओं का उदय होता है। हृदय उनके चरणों में सर्वस्व न्योछावर कर देने को आतुर हो उठता है। मेरे सहयोगियो! मैं इस वर्ष के तीस लाख रुपये के लाभ में से पन्द्रह लाख रुपये श्रमिकों में वितरित करने की घोषणा करता हूँ। (करतल-ध्वनि होती है।) शेष अपना सर्वस्व महामानव मधुसूदनजी के श्रीचरणों में अर्पित करता हूँ। आज से मैं भी सर्वोदय द्वारा संचालित सहकारी ग्रामोद्योग तथा सहकारी कृषि का एक सदस्य हूँ। अपनी चीनी-मिल ग्रामोद्योग के अधीन करता हूँ। (करतल-ध्वनि)

मधुसूदन : जमींदार साहब की दूरदर्शिता एवं सहृदयता के लिए मैं उन्हे धन्यवाद देता हूँ। बन्धुओ! जब तक विश्व में एक भी मनुष्य जीवित है, तब तक हमें प्रेम, सहयोग, करुणा और मैत्री की भावनाओं की सफलता के प्रति निराश नहीं होना चाहिए। जब हम किसी व्यक्ति के समीप प्रेम, सहयोग, करुणा और मैत्री की महान् भावनाएँ लेकर जाते हैं, तब इन भावनाओं की तीव्र विद्युत् तरंगे उस व्यक्ति के हृदय में प्रवेश कर उसमें भी उन्हीं भावनाओ को जाग्रत करती है। कला इसी माध्यम से हमारे अन्तस्तल में विभिन्न उद्वेगों को उत्पन्न करती है। जिस समय दो हृदय इस प्रकार निर्मल मैत्री के बन्धन में बँधते हैं, उस समय हृदय के अज्ञात कोने से आनन्द का स्रोत फूट पड़ता है और हृदय ब्रह्मानन्द में निमग्न हो जाता है। बन्धुओ! आइये, हम आज मानवता की सुख शान्ति के इतिहास में सिरोही के इस भव्य एवं पुनीत अध्याय को भी गूँथ दें। (करतल-ध्वनि) आज से सिरोही मे ग्राम-राज्य की व्यवस्था होगी और स्वर्ण-युग का आरम्भ होगा। (करतल-ध्वनि) आप लोग

काफी थके लगते हैं। सभी लोग जाकर सुख-शान्तिपूर्वक भोजन ग्रहण करें और आनन्द मनायें।

(करतल-ध्वनि करते हुए सभी जाते हैं।)

पटाक्षेप

पंचम दृश्य

[स्थान : वन में बलवीर सिंह का प्रकोष्ठ। बलवीर सिंह अपने साथी दलपत सिंह के साथ बैठे बातें कर रहा है।]

बलवीर सिंह : तुमने सुना दलपत सिंह ?

दलपत सिंह : क्या सरदार ?

बलवीर सिंह : महेश सिंह और वीरेश सिंह ने सर्वोदयपुरी की नागरिकता ग्रहण कर ली है।

दलपत सिंह : तो क्या उन्हें नर्मदा-घाट-बाँध तोड़ने में सफलता नहीं मिली ?

बलवीर सिंह : (उत्तेजित होकर) क्लीब पुरुषों को कभी सफलता मिली भी है या उन्हें ही मिलती !

दलपत सिंह : आपको कैसे विदित हुआ कि वे अपने प्रयास में असफल रहे ?

बलवीर सिंह : उनका पत्र आया है। यह लो, पढ़ो।

दलपत सिंह : (पत्र पढ़ता है)

श्री

सर्वोदयपुरी
१८-१२-'५९.

श्रीयुत बलवीर सिंहजी,

सादर वन्दे !

यह पत्र पढ़कर आपको आश्चर्य तो अवश्य होगा, परन्तु जो कुछ भी लिखा जा रहा है, वह अक्षरशः सत्य है।

मनुष्य का जीवन कब नवीन मोड़ ग्रहण करेगा, यह एक अनिश्चित प्रक्रिया है तथा उसके हृदय को कब सत्य अपने प्रकाश से प्रकाशित कर देगा, कौन जानता है। ये ही तो वे क्षण हैं, जब मनुष्य दानव से मानव और पशु से देवता बन जाता है।

हमारे जीवन में भी क्रान्ति के वे क्षण आये। हमने हिंसा के मार्ग का परित्याग कर अहिंसा के मार्ग को ग्रहण किया है। जिस क्षण से हमने इस नवीन जीवन में प्रवेश किया है, उसी क्षण से जीवन में एक नवीन आकर्षण का अनुभव हुआ है। सृष्टि का हर कण आनन्द और अनन्त सौन्दर्य से व्याप्त दृष्टिगोचर होता है। इन शुष्क हृदयों से रस का घट छलका पड़ रहा है। ज्ञात नहीं, इतना रस कहाँ भरा पड़ा था।

अन्त में मैं केवल इतना कहना चाहता हूँ कि यदि इस रस का एक बार भी रसास्वादन कर पाओगे, तो जीवन को कृतार्थ समझोगे।

अभिन्न हृदय

महेश सिंह एवं वीरेश सिंह

बलबीर सिंह : देखो इन क्षुद्र पुरुषों की प्रतिस्पर्धा! मुझे भी अपने समान बनाना चाहते हैं!

(पत्रवाहक का प्रवेश)

पत्रवाहक : सरदार के चरणों मे सेवक का प्रणाम स्वीकार हो।

बलबीर सिंह : कहो, तुम क्या समाचार लाये हो?

पत्रवाहक : (पत्र देते हुए) सरदार के नाम यह पत्र है।

(बलबीर सिंह पत्र लेकर पढ़ता है)

बलबीर सिंह : (उत्तेजना से टहलते हुए) तो हरीचन्द भी असफल रहा! लिखता है कि सिरोही के नागरिक उसकी बात सुनने तक को तैयार नहीं हैं। उसे एक असामान्य व्यक्ति की संज्ञा दे दी गयी है। सर्वोदय की कार्य-प्रणाली ने सब पर सम्मोहन का प्रभाव डाल दिया है।

दलपत सिंह : लगता है, भारत में सर्वोदय सफल होकर ही रहेगा!

(खिड़की के काँच को तोड़ती हुई गोली बलवीर सिंह के कान को स्पर्श करती निकल जाती है। बाहर पुनः गोली चलने की आवाज आती है। साथ ही चीख सुनाई पड़ती है। सभी दौड़कर घटनास्थल पर पहुँचते हैं।)

बलवीर सिंह : (रक्त से लथपथ व्यक्ति को देखते हुए) कौन सुरेन्द्र सिंह !

सुरेन्द्र सिंह : हाँ, मैं ही हूँ सुरेन्द्र सिंह। तेरा काल। इस जन्म में जिस कार्य को नहीं कर सका, उसे अगले······(श्वास रुक जाती है।)

बलवीर सिंह : (सैनिक को देखकर) कौन, सर्वोदयपुरी के नगर-रक्षक !

नगर-रक्षक : (बन्दूक को कन्धे में लटकाते हुए) जी हाँ।

बलवीर सिंह : क्या तुमही ने सुरेन्द्रसिंह को गोली मारी है ?

नगर-रक्षक : जी हाँ। मैंने देखा कि वह आपके कक्ष पर अपना निशाना साधकर एक गोली छोड़ चुका है और दूसरी गोली छोड़नेवाला है। मैंने उसी समय उसे गोली से गिरा दिया।

दलपत सिंह : वीर सैनिक, यदि तुम समय पर न पहुँचे होते, तो पता नहीं क्या होता !

बलवीर सिंह : कहो सैनिक ? कैसे आये हो ?

नगर-रक्षक : प्रियवदाजी के नाम यह पत्र है।

बलवीर सिंह : ठीक। पत्र प्रियंवदाजी तक पहुँचा दिया जायगा। दलपत सिंह, इनके ठहरने की व्यवस्था कर दो।

(सभी जाते हैं। बलवीर सिंह उत्तेजित अवस्था में सुरेन्द्र सिंह के शव के पास टहलता है।)

पटाक्षेप

षष्ठ दृश्य

[स्थान : सिरोही में मधुसूदन का प्रकोष्ट। मधुसूदन तथा अन्य व्यक्ति बैठे हुए हैं।]

महेन्द्र : आपका सर्वोदयपुरी जाने का समाचार सुन सभी नगर-निवासी

व्याकुल हो गये है! मुझे जैसे ही विदित हुआ, वैसे ही मैं भी आपके दर्शनार्थ भागा चला आया हूँ। अभी आप कुछ दिन और सिरोही में रहते, तो अच्छा होता।

मधुसूदन : सर्वोदयपुरी से पत्र आया है। उसमें नगरश्रेष्ठजी ने हमे शीघ्र ही सर्वोदयपुरी चले आने को कहा है। फिर यहाँ का काम भी तो पूर्ण हो चुका है। मैं जिस उद्देश्य को लेकर आया था, वह पूर्ण हो गया। सिरोही मे ग्रामराज्य-व्यवस्था की स्थापना हो गयी।

महेन्द्र : सफलता कर्मवीरों की अनुगामिनी वनकर चलती है।

मधुसूदन : कल ग्रामराज्य-उत्सव में सभी नगर-निवासियों ने अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

महेन्द्र : नगर-निवासियों ने केवल सहयोग ही नहीं, अपना हृदय प्रदान किया है। ऐसा अपूर्व उत्सव हमने जीवन में कभी नहीं देखा। नगर के आवाल-वृद्ध नर नारियों में अलौकिक स्फूर्ति और उमंग दृष्टिगोचर हो रही थी। सभी एक विशेष मादकता में मतवाले दिखाई देते थे। जीर्ण-शीर्ण जीवन में नवचेतना की वाढ़ आ गयी थी। नगर का कायाकल्प हो गया। उसके लघु हृदय में इतना आनन्द कहाँ छिपा रहा है।

मधुसूदन : यही तो है सत्य की महान् शक्ति। वह जीवन का आनन्द से अभिषेक कर उसे सौन्दर्य से सुसज्जित करता है। सत्य के प्रकाश से जीवन का अन्धकार नष्ट हो जाता है। मधुरिमा का अक्षय स्रोत प्रवाहित हो जीवन को प्लावित कर देता है। जीवन का कलात्मक रूप प्रकट होता है। प्रत्येक व्यक्ति को भोजन, वस्त्र और आवास का अधिकार उसी प्रकार प्राप्त हुआ, जिस प्रकार चराचर के हर प्राणी को प्राप्त है। असत्य अवरोधों का अन्त हुआ। सत्य ने जीवन मे प्रवेश किया। जीवन प्रफुल्लित हो उठा। उसने कृत्रिम वन्धनों को तोड़ अपना यथार्थ स्वरूप पाया।

(कोकिला और नीलम का प्रवेश)

कोकिला : सामान जा चुका है। अब हमें भी चलना चाहिए।

मधुसूदन : हम तो तैयार ही बैठे है। चलो। अभी तो नगर-निवासियों से भेंट करने में काफी समय लगेगा।

(हाथ में पुष्प-मालाएँ लिये जितेन्द्र तथा रतन सिंह आदि कुछ व्यक्तियों का प्रवेश)

जितेन्द्र : (माला पहनाते हुए) सुना है प्रधानवर, हमें अनाथ करके आप जा रहे हैं। (सभी मालाएँ पहनाते हैं)

मधुसूदन : ऐसा मत कहो जितेन्द्र !

जितेन्द्र : क्यों न कहूँ ? जिसने पिता के समान हमारे दुःख-दर्द को समझा, हमारी हर छोटी-बड़ी समस्याओं को परिवार के प्रधान व्यक्ति के समान अपनी समस्या समझकर सुलझाया, जिसने हमारी तुच्छ पीड़ा के लिए अपनी सुख-निद्रा का त्याग किया, जब वही स्वजन हमे छोड़कर जा रहा हो, तो क्या हम अनाथ नहीं, सनाथ हो रहे हैं। (आँसू पोंछता है)

मधुसूदन : मिलन और वियोग—दो कूलों के मध्य जीवन-सरिता सदा प्रवाहित होती आयी है और प्रवाहित होती रहेगी। जो अटल और अनिवार्य है, उसके लिए विवेकवान् पुरुष शोक नहीं करते। (जितेन्द्र के आँसू पोंछते हुए) जितेन्द्र ! तुम्हें यह कमजोरी शोभा नहीं देती।

जितेन्द्र : शोभा दे या न दे, हृदय में उठनेवाली घटाएँ आँखों के रास्ते बरस रही हैं, तो मैं क्या करूँ ? कैसे रोकूँ ? क्यों रोकूँ ?

मधुसूदन : अरे रतन ! तुम भी रो रहे हो ?

रतन : क्या मैं ही रो रहा हूँ ? जब से आपके जाने का समाचार सुना है, नगर के हर व्यक्ति की आँखें डबडबा आयी हैं।

मधुसूदन : चलो उठो। हृदय को कड़ा करो। मैं कुछ दूर थोड़े ही जा रहा हूँ। सर्वोदयपुरी समीप ही तो है। हर सप्ताह आते-जाते रहना।

(बाहर निकलकर चलने लगते हैं। चारों ओर से व्यक्तियों के समूह आ रहे हैं। एक बालिका पुष्प लिये दौड़ी चली आ रही है।)

वालिका : तुम जा रही हो कोकिला दीदी ?

कोकिला : (उसे गोदी में उठाते हुए) हॉं वेटी, हम जा रहे है।

वालिका : तो तुम अब हमें कहानी नहीं सुनाओगी ?

कोकिला : नहीं। जरूर सुनायेंगे।

वालिका : जब तुम जा रही हो, तो फिर कैसे सुनाओगी ?

कोकिला : हम फिर से लौटकर आयेंगे वेटी !

वालिका : (ताली वजाते हुए) लौटकर आओगी ? तब तो वहुत अच्छा होगा। लो, मेरे ये फूल लेती जाओ। मैं तुम्हारे लिए लायी हूँ।

कोकिला : लाओ वेटी !

वालिका : (नीचे उतरकर, फूल देते हुए) लो।

(सभी नर-नारी मालाएँ पहनाते हैं)

मधुसूदन : यह क्या ! आप लोग वृद्ध और समझदार होकर भी शोक कर रहे हैं।

सोहन सिंह : ये तो प्रेमाश्रु है नरश्रेष्ठ ! जन-मानस में गूँजनेवाली युग-वाणी को व्यक्त करनेवाले हर युग-पुरुष के चरणो में जनता अपने हृदय की श्रद्धा उँड़ेलती आयी है। यह तो जनसागर में उमड़ा हुआ ज्वार है, जो रोके नहीं रुकता। वह देखिये। नर-नारियों के समूह के समूह बढ़े चले आ रहे हैं। हाथों में पुष्प-मालाएँ, हृदय में श्रद्धा और नयनों में अश्रु लिये। और ये सभी चले जा रहे हैं स्तब्ध, मौन, वेदना की साकार मूर्ति वने। (गाड़ियों के समीप पहुँचकर)

मधुसूदन : (आँखों में अश्रु लिये) वाणी साथ नहीं दे रही है, परन्तु हृदय को कठोर वनाकर कह रहा हूँ कि आप लोग अब जायँ। आशा है, आप लोग सर्वोदयपुरी सदा आते-जाते रहेंगे।

(गले मिल-मिल विदा हुए। जब तक गाड़ियाँ दृष्टि से ओझल न हो गयीं, तब तक निर्निमेष देखते रहे।)

पटाक्षेप

सप्तम दृश्य

[स्थान : वन में बलबीर सिंह के सदन का प्रांगण ।
प्रियंवदा, ललितांगी और स्वामी महा-
मूर्खानन्दजी बैठे वार्तालाप
कर रहे हैं ।]

स्वामी महामूर्खानन्द : सुना है, सर्वोदयपुरी से कोई पत्र आया है ।

प्रियंवदा : जी हाँ ।

स्वामी महामूर्खानन्द : क्या लिखा है ?

प्रियंवदा : नगर-श्रेष्ठजी ने हम सबको शीघ्र ही सर्वोदयपुरी बुलाया है ।

स्वामी महामूर्खानन्द : चलो, यह भी अच्छा हुआ ।

प्रियंवदा : क्या अच्छा हुआ ?

स्वामी महामूर्खानन्द : यही कि चम्पानगरी में ग्रामराज्य की स्थापना के बाद ही सर्वोदयपुरी का बुलावा आया है ।

ललितांगी : सिरोही में भी तो ग्रामराज्य की स्थापना हो चुकी है ।

स्वामी महामूर्खानन्द : हाँ, वहाँ भी हो चुकी है ! सर्वोदयपुरी का प्रताप ही ऐसा है । उसका यश मही पर छाया है । उसकी प्रेरणा से व्यक्तियों का हृदय-परिवर्तन सहज ही हो जाता है । दूसरी ओर सर्वोदयपुरी ने ऐसे सुलझे विचारों के व्यक्तियों का निर्माण किया है, जो अपने उद्देश्य की पूर्ति में हर परिस्थितियों में सलग्न रहते हैं । कोई भी अवरोध अथवा विश्व की कोई भी परिस्थिति उन्हें उनके मार्ग से च्युत नहीं कर सकती ।

ललितांगी : बहन प्रियंवदा इसका एक अच्छा उदाहरण है ।

प्रियंवदा : कैसे ?

ललितांगी : दस्यु द्वारा हरण किये जाने पर भी वह एक महान् उद्देश्य की पूर्ति में सफल हो सकीं । अवरोध और परिस्थितियाँ किनारे खड़ी होकर मुँह जोहती रहीं ।

स्वामी महामूर्खानन्द : जब किसी विचारधारा के प्रचारकों में कर्तव्य के प्रति समर्पण का भाव उत्पन्न हो जाता है, तब तन्मयता, लगन और अध्यवसाय स्वाभाविक रूप से उनके जीवन में प्रवेश कर जाते हैं। ये सब मिलकर व्यक्ति को दुःसाध्य से दुःसाध्य साध्य के समीप शीघ्र ही भेज देते हैं। वह विचारधारा प्रचारकों के रुधिर और स्वेद-बिन्दु में अंकुरित हो, धरा पर लहलहा उठती है।

(बलबीर सिंह का प्रवेश)

बलबीर सिंह : स्वामीजी, मैंने भी आप लोगों के साथ सर्वोदयपुरी चलने का निश्चय किया है।

स्वामी महामूर्खानन्द : क्या दस-पचास हजार रुपयों की और आवश्यकता आ पड़ी है आपको ?

बलबीर सिंह : नहीं, मुझे अब रुपयों की आवश्यकता नहीं है। बल्कि ऐसे पुरुषों की आवश्यकता है, जो जीवन के रहस्यों से अवगत हों।

स्वामी महामूर्खानन्द : क्यों ? आपको ऐसे मनुष्यों की क्या आवश्यकता आ पड़ी ? क्या किसी विद्वान् का धन हरण करना है ?

बलबीर सिंह : नहीं, मैंने अब धन-हरण करना छोड़ दिया।

स्वामी महामूर्खानन्द : यह कब से छोड़ दिया आपने ?

बलबीर सिंह : आज से ही।

स्वामी महामूर्खानन्द : अच्छा, तो जब से आपने हम लोगो के सर्वोदयपुरी जाने का समाचार सुना, तभी से आपने अपना महान् व्यापार बन्द कर दिया। क्यों ऐसा करते हो बलबीर सिंह ? सर्वोदयपुरी के विनाश पर क्यों तुले हो ? देश में और भी बहुत बड़े धन-कुबेर हैं। उनसे तुम अपनी आवश्यकता की पूर्ति कर सकते हो। एक बार लूटा, दूसरी बार लूटा, अब क्या फिर उसे तबाह करना चाहते हो ? क्या तुममें नाममात्र को भी मनुष्यता नहीं है ? यदि किसीके प्रति कृतज्ञ नहीं बन सकते, तो कृतघ्न तो मत बनो।

बलबीर सिंह : अभी तक कृतघ्न बना था स्वामीजी ! अब कृतज्ञ बनना चाहता हूँ ।

स्वामी महामूर्खानन्द : विश्व का हर प्राणी अपने स्वभाव का दास होता है । कोई भी प्राणी अपने स्वभाव को तिलांजलि नहीं दे सकता । भेड़िया कभी भी अहिंसा का पुजारी नहीं हो सकता और सारिका कभी भी कटु-भाषिणी नहीं हो सकती ।

बलबीर सिंह : लेकिन मनुष्य मनुष्य है । कितना भी मनुष्यता से गिरा हुआ क्यों न हो, वह मनुष्य बन सकता है ।

स्वामी महामूर्खानन्द : व्यक्ति के निर्माण में संस्कारों का बहुत बड़ा महत्त्व होता है बलबीर सिंह ! संस्कार ही एक व्यक्ति को पशु और दूसरे को मानव बनाते हैं । पशुओं के मध्य रहकर एक व्यक्ति नर-भक्षी बन जाता है और सुसंस्कृत व्यक्तियों के मध्य रहनेवाला दूसरा व्यक्ति अहिंसा का पुजारी बन जाता है । ये संस्कार ही स्वभाव में परिणत हो जाते हैं और जीवनभर उनका प्रभाव मिटाये नहीं मिटता ।

बलबीर सिंह : कुछ भी हो, मानव मानव है । नरभक्षी मानव और सन्त में—दोनों ही में मानव का अंश विद्यमान होता है । भले ही नरभक्षी में उस अंश को अन्धकार ने ढँक लिया हो और सन्त में उस अंश का समुचित विकास हुआ हो । लेकिन कभी कुछ घट-नाओं का प्रभाव इतना अधिक तीक्ष्ण एवं वेगवान् होता है कि वह अन्तस्तल में प्रविष्ट हो मानव अंश पर आच्छादित सघन तिमिर को छिन्न-भिन्न कर देता है और मानव का मानव के रूप में आविर्भाव होता है । जीवन की गति, दिशा और प्रणाली परिवर्तित हो जाती है । जीवन में नये प्रकाश का आविर्भाव होता है, जो जीवन को नये पथ की ओर अग्रसर करता है ।

स्वामी महामूर्खानन्द : तो क्या आपका सर्वोदयपुरी चलना इस नवीन परिवर्तन का सूचक है ?

बलबीर सिंह : अवश्य !

स्वामी महामूर्खानन्द : फिर आप कुछ व्यक्तियो के साथ की कामना क्यों कर रहे थे ?

वलवीर सिंह : जीवन मे सुख-शान्ति प्राप्त करने के लिए।

स्वामी महामूर्खानन्द : क्या आप वतला सकते है कि वह कौन-सी घटना है, जिसने आपके जीवन मे यह परिवर्तन किया है ?

वलवीर सिंह : क्या आपने सुरेन्द्र सिह को छटपटाते हुए नहीं देखा ?

स्वामी महामूर्खानन्द : यह तो आप लोगों के जीवन की साधारण घटना है। हजारों व्यक्तियों ने आपके सामने छटपटा-छटपटाकर, तड़प-तड़पकर मृत्यु का आलिगन किया होगा। फिर यदि एक व्यक्ति ने आपके सामने मृत्यु को प्राप्त किया, तो इसमें नवीनता ही क्या है ?

वलवीर सिंह : आपने सुरेन्द्र सिंह में व्याप्त असीम घृणा को नहीं देखा है। ज्ञात नहीं, कितनी घृणा भरी थी उसके हृदय में। उसके आनन और नेत्रों से घृणा की तीक्ष्ण लपटें निकल रही थीं। मैंने जीवन में ऐसी विकराल घृणा कभी नहीं देखी। लगता था, उन ज्वालाओं में मैं जलकर नष्ट हो जाऊँगा। उन लपटों के ताप ने अन्त:चेतना को झकझोर हृदय को विदग्ध कर दिया। घृणा के महासागर में प्रलय आया था, जिसमें जीवाणु एक-एक कर समाधिस्थ हो रहे थे। मैंने अव समझा कि घृणा का वह तूफान ही विनाश का अंधड़ वहा जगत् में अशांति और हाहाकार मचाता है, जीवन को विषाक्त कर देता है।

स्वामी महामूर्खानन्द : इसीलिए तो जीवन मे घृणा की नहीं, प्रेम की आवश्यकता है।

वलवीर सिह : स्वामीजी, हिसा-प्रतिहिंसा की भावनाएँ इतनी प्रवल और उत्तप्त होती हैं कि उसमे जीवन के सभी सम्वन्ध—पिता-पुत्र का सम्वन्ध, भाई-भाई का सम्वन्ध, पति पत्नी का सम्वन्ध और मित्र-मित्र का सम्वन्ध सभी धू-धूकर जलकर नष्ट हो जाते हैं, यह मै नहीं

जानता था ! यह सुरेन्द्र सिंह जब जीवन की अन्तिम साँसें गिन रहा था, उस समय इसे मैंने जीवन-दान दिया। पास रखकर इसे पाला-पोसा, बड़ा किया, जीवन के दाँवपेच सिखाये। इस पर मैंने सदा पुत्र-तुल्य स्नेह किया। रोगी अवस्था मे मैंने रात-रातभर इसके बिस्तर के समीप बैठकर, इसकी सेवा-शुश्रूषा की। वही सुरेन्द्र सिंह मेरे जीवन का भूखा बन गया और वह भी केवल इसलिए कि मैंने उसे अनैतिक कार्य करने से रोका। उसने मुझ पर छुरी फेंकी। मैंने सोचा, क्रोधावस्था में मनुष्य विवेक खो बैठता है। क्रोध शान्त होने पर वह मेरे समीप आयेगा। मुझसे क्षमा-याचना करेगा। परन्तु प्रतिहिंसा की भावना ने उसे अन्धा बना दिया। पिता-पुत्र जैसे प्रेम को ताक पर रखकर उसने मुझ पर गोली चलायी। अपने ही जीवन-रक्षक के प्राणों का भक्षक बन गया वह ! प्रतिहिंसा का इससे बढ़कर और क्या अभिशाप हो सकता है कि वे दो व्यक्ति, जिन्होंने जीवनभर सदा साथ ही भोजन किया हो, साथ ही शयन किया हो और साथ ही जीवन व्यतीत किया हो, वे ही एक-दूसरे के प्राणघातक बन जायें !

स्वामी महामूर्खानन्द : हिंसा से सदा हिंसा ही बढ़ती है। उसकी हर चिनगारी से हजार चिनगारियाँ निकलती है और सृष्टि के सौंदर्य को क्षत-विक्षत कर देती हैं। सृष्टि के हृदय में सदा द्वंद्व छिडा रहता है— हिंसा और अहिंसा का, सत् और असत् का, जीवन और मृत्यु का। अहिंसा के धरातल पर जीवन में निहित शाश्वत सौन्दर्य प्रस्फुटित हो उठता है, परन्तु हिंसा सदा इसके विनाश के प्रयत्न में रहती है। जीवन की साधना इसी हिंसा पर विजय प्राप्त करना है, जो उसकी सबसे बड़ी शत्रु है। वह भी उसीके भीतर विद्यमान है।

बलबीर सिंह : प्रतिहिंसा व्यक्ति को पशु बना देती है, यह मुझे नहीं मालूम था।

स्वामी महामूर्खानन्द : तुम भूल कर रहे हो बलबीर सिंह ! हिंसा के

मार्ग पर चलनेवाला व्यक्ति सदा से ही पशु होता है। वह कभी भी मानव नहीं होता, क्योंकि हिंसा-प्रतिहिंसा के सिद्धान्त पर पशु-जीवन आधारित है, मानव-जीवन नहीं। पशु हिंसा-प्रतिहिंसा की भावनाओं के अनुचर मात्र होते हैं, परन्तु मानव मे हिंसा-प्रतिहिंसा की भावना पर विजय प्राप्त करने की क्षमता रहती है। जो व्यक्ति हिंसा-प्रतिहिंसा का अनुचर बन हिंसा के मार्ग पर अग्रसर होता है, वह पशु से श्रेष्ठ नहीं हो सकता। हिंसा की राह चलकर जीवन में सुख-शान्ति स्थापित करना चाहते हो बलवीर सिंह ?

बलवीर सिंह : अभी तक तो मैं यही समझता आया था कि व्यक्ति के हिंसक कर्म से और उसके जीवन की सुख-शान्ति से कोई सम्बन्ध नहीं है। दोनों पूर्णतः भिन्न भिन्न वस्तुएँ हैं।

स्वामी महामूर्खानन्द : कर्म और जीवन भला कैसे भिन्न-भिन्न हो सकते हैं ? कर्म की भट्ठी में ही तो जीवन गढ़ा जाता है। हर कर्म का प्रभाव जीवन पर अनिवार्य रूप से पड़ता है। जीवन-सरोवर मे कर्म का प्रभाव उसी प्रकार पड़ता है, जिस प्रकार एक शान्त सरोवर में एक छोटा-सा कंकड़ गिरकर उसमें अनन्त तरंगों को उत्पन्न कर अपने प्रभाव से सरोवर के जीवन में हलचल उत्पन्न कर देता है। कर्म साधना-पथ है, जिस पर चलकर आनन्दरूपी साध्य की प्राप्ति के लिए जीवन को सँवारा जाता है। इसके स्वतन्त्र दो पथ है—सत्कर्म पथ और दुष्कर्म पथ। सत्कर्म पथ पर चलने से व्यक्ति के जीवन मे प्रेम, त्याग, करुणा, अहिंसा और मैत्री की भावना निरन्तर बलवती होती जाती है और जीवन का साध्य क्रमशः जीवन मे प्रकट होने लगता है। दूसरी ओर दुष्कर्म पथ पर चलनेवाले व्यक्ति के जीवन में अविश्वास, घृणा, हिंसा और शत्रुता की भावनाएँ पनपती रहती है और व्यक्ति अपने साध्य से निरन्तर दूर हटता जाता है। वह अशान्ति की ओर अग्रसर होते हुए निरन्तर उसके समीप पहुँचता जाता है। फिर एक ऐसी स्थिति आती है, जब जीवन ने

विस्फोट का प्रादुर्भाव हो जाता है। इसलिए अपवित्र मार्ग पर चलकर पवित्रता को कभी भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। काली वस्तु कभी सफेद नहीं हो सकती।

बलबीर सिंह : सुरेन्द्र सिंह ने मेरी आँखें खोल दी। मेरी आँखों के सामने पड़े हुए पर्दे को उठा दिया।

स्वामी महामूर्खानन्द : यदि विचार करके देखो बलबीर सिंह! तो तुम यही पाओगे कि हिंसा की भावना ने आज के जन-जीवन मे अशान्ति मचा रखी है। तुम्हारे साथ जो हुआ, वह सभी के साथ होता आया है। छोटे रूप में लो या बड़े रूप में, सभी स्थानों मे इसके उदाहरण भरे पड़े हैं। एक व्यक्ति से उसका सदा का हित-चिन्तक मित्र सीने पर पिस्तौल की नली लगाकर उसकी सत्ता को हथिया लेता है, तो दूसरा व्यक्ति अपना पद अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए अपने अभिन्नहृदय साथी को, जिसने अनेक बार उसकी जीवन-रक्षा की है, सदा के लिए अक्षय निद्रा मे सुला देता है। त्याग-भावना से शून्य हर व्यक्ति अपने मार्ग के अवरोधक को, चाहे वह कोई भी क्यों न हो, किसी भी प्रकार हटाना चाहता है। सत्ता के क्षेत्र मे आज क्या मचा है ? यही तो हो रहा है। इसीलिए तो अशान्ति का वातावरण छाया हुआ है। आज के इस भौतिकवादी प्रगति के युग मे जन-जीवन अविश्वास, घृणा और भय के कारण अत्यधिक त्रसित है। आज की समस्या व्यक्ति के निर्माण की समस्या है।

बलबीर सिंह : स्वामीजी! मैं इस जीवन से तंग आ चुका हूँ। मुझे अब यहाँ की दग्धता नहीं, सर्वोदयपुरी की शीतलता चाहिए। मैं इस समय जीवन की मरुभूमि के मध्य खड़ा ग्रीष्म के भीषण ताप से झुलसा जा रहा हूँ। जीवन के प्रति श्रद्धा का अभाव और अशान्त वातावरण के कारण मुझे नीचे से तरल बालू विकल कर रही है और ऊपर से दिनकर के प्रखर बाण चल रहे हैं। लगता है, जीवन का

अर्थ शून्य मे खो गया है। जीवित हूँ, पर जीवन बेस्वाद और कसैला है। जीवन मे एक कसक और बेचैनी है। जीवन की इस तपन के मध्य सर्वोदयपुरी की मधुर स्मृति का शीतल झोंका आकर हृदय की दाह बुझाता है। स्वामीजी! क्या हम आज ही सर्वोदयपुरी नहीं पहुँच सकते?

ललितांगी : (आश्चर्य से) तो क्या वास्तव मे आप हम लोगों के साथ सर्वोदयपुरी चलेंगे? क्या यह सम्भव है?

बलवीर सिंह : हाँ ललिते! मैं भी चलूँगा। मुझ जैसे व्यक्ति के लिए सिवा सर्वोदयपुरी के और कहीं शान्ति नहीं मिल सकती। सर्वोदयपुरी में रहने का सौभाग्य मुझे कुछ ही दिन प्राप्त हुआ। वहाँ के पवित्र वातावरण और नागरिकों के शील का प्रभाव अभी भी मेरे मस्तिष्क में विद्यमान है। विरोधी मानसिक स्थिति के कारण मैं वहाँ का उचित मूल्यांकन नहीं कर सका था। महेश सिंह के पत्र को मैंने पागल का प्रलाप समझा था। परन्तु आज उसके एक-एक शब्द में निहित भाव मेरे हृदय पर गहरा प्रभाव डालते हैं। मुझे अच्छी तरह याद है, सेठ कालूमल जैसा व्यक्ति भी सर्वोदय से कितना प्रभावित था! और अन्त में उसने सर्वोदय ग्रहण कर ही लिया। सर्वोदय-समाज इतना अधिक आकृष्ट क्यों कर रहा है, यह रहस्य मेरी समझ में अब आया। मैं देख रहा हूँ, पूँजीपतियों के स्वर्ण-भण्डार से लेकर उन्मुक्त गगन तक सर्वोदय की पताका फहरा रही है। धरा से नीलाम्बर तक सर्वोदय का विजय-गान गूँज रहा है। प्रियंवदाजी, आपको मैंने बहुत कष्ट दिया। उसके लिए मै आपसे क्षमा चाहता हूँ।

प्रियंवदा : आप भी कैसी बातें कर रहे हैं? आप हम लोगों की दृष्टि में कभी भी सर्वोदयपुरी के शत्रु नहीं रहे। आपसे बढ़कर और कौन मित्र हो सकता है? यदि आप मुझे न लाये होते, तो चंपानगरी मे ग्राम-व्यवस्था कैसे हो सकती थी?

बलवीर सिंह : कुछ भी हो, मेरा वह लज्जास्पद कार्य मुझे सदा धिक्कारता रहेगा। यदि हो सके, तो मुझे क्षमा कर देंगी। केवल यह समझकर कि वह कार्य मैंने सुषुप्तावस्था में किया था। कर्मवीर मधुसूदनजी से भी मुझे क्षमा-याचना करनी है।

प्रियंवदा : क्यों ? उनका आपने क्या अपराध किया है ?

बलवीर सिंह : उस सरल हृदय, महान् प्रज्ञा-सम्पन्न, यशस्वी पथिक के प्रति मेरे हृदय मे सदा कुविचार रहे हैं। मैंने उन्हें हानि पहुँचाने के अनेक उपक्रम किये, परन्तु मेरे हर तीर उस महारथी की अभेद्य रक्षा-पंक्ति से ही टकराकर लौट आये। उस वीर-हृदय को यह भी ज्ञात नहीं हुआ होगा कि कोई दुष्ट उन जैसे व्यक्ति को भी हानि पहुँचाना चाहता है। उस महान् विभूति ने व्यक्ति के चरित्र का ऐसा सुन्दर निर्माण किया है कि उनमें अब परिवर्तन कर सकना स्वयं प्रकृति के भी सामर्थ्य से परे है। मैं भी उस युग-निर्माता के चरणों पर गिरकर अपने अपराधों का प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ।

स्वामी महामूर्खानंद : मुझे यह देखकर अति हर्ष हो रहा है कि तुम प्रायश्चित्त के लिए इतने आतुर हो रहे हो।

बलवीर सिंह : क्या करूँ ? हृदय मे घुमड़नेवाले पयोद बरस जाना चाहते हैं और जब तक ये बरस नहीं जाते, तब तक मुझे शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

प्रियंवदा : मैं सोचती हूँ स्वामीजी ! कि हम लोग सन्ध्या समय ही प्रस्थान कर दें, तो उत्तम होगा।

स्वामी महामूर्खानंद : हाँ बेटी। जैसा तुम उचित समझो।

प्रियंवदा : चलो ललितांगी। अभी हमे अपना सामान व्यवस्थित करना है।

(सभी का प्रस्थान)

पटाक्षेप

अष्टम दृश्य

[स्थान : सर्वोदयपुरी का सार्वजनिक विवाह-स्थल ।]

अचला : देखो कादम्बिनी ! तुम वन्दनवार ठीक से नहीं लगा रही हो ।

कादंबिनी : और तू भी सुन्दर चित्र नहीं बना रही हो ।

अचला : मेरे चित्र की सुन्दरता को तुम जैसी बाला क्या समझे ?

कादंबिनी : यदि मैं नहीं समझ सकती, तो कौन समझेगा ?

अचला : मेरे इन चित्रों का मूल्यांकन केवल वे युगल-प्रेमी कर सकते हैं, जो शीघ्र ही मधुर बन्धन में बँधने जा रहे हैं । जिस समय नरश्रेष्ठ मधुसूदन और प्रियंवदा की युगल जोड़ी विवाह सम्पन्न होने के बाद यहाँ से निकलेगी, उस समय उनके मनोहर आनन पर दृष्टिपात करना । इसी प्रकार जब बलवीर सिंह और ललितांगी की युगल जोड़ी निकले, तब दृष्टिपात करना । उनके आनन की भाव-भंगिमा देखकर ही तुम समझ जाओगी कि मेरे चित्र कितने हृदयग्राही है ।

कादंबिनी : तूने तोरण-द्वार की सजावट देखी अचला ?

अचला : मैं तो आज चार दिनों से अपने रंग और कूँची से जूझ रही हूँ । इस विवाहोत्सव के समय मेरा हृदय उछला पड रहा है । लगता है, मेरे हृदय में जितने मधुर भाव हैं, सबको उँड़ेल दूँ ।

कादंबिनी : मैं तो तोरण-द्वार की बात कर रही हूँ और तू है कि अपना ही राग अलाप रही है ।

अचला : अच्छा बता. क्या कह रही थी तू ?

कादंबिनी : जिन व्यक्तियों ने तोरण-द्वार बनाया है, वे बहुत ही कुशल कलाकार मालूम पड़ते हैं । ऐसी सुन्दर कला मैंने आज तक नहीं देखी । सुना है, कुछ कलाकार सिरोही से और कुछ चम्पानगरी से आये हैं ।

अचला : तोरण-द्वार की प्रशंसा तो मैंने भी सुनी है, परन्तु अभी देखने का सौभाग्य नहीं मिला ।

(कोकिला और नीलम का प्रवेश)

कोकिला : बहुत सुन्दर ! देखा नीलम, कितनी भव्य सजावट की है मेरी इन बहनों ने।

कादंबिनी : तो क्या इस सजावट मे आपका कम सहयोग है। आप ही ने तो हमारा मार्ग-दर्शन किया है।

कोकिला : अपने कार्य की सफलता का एक अंश क्यों मुझे दे रही हो, जब कि मैंने तुम्हारा कोई कार्य नही किया। मैं तो नागरिकों के भोजन की व्यवस्था में व्यस्त हूँ।

कादंबिनी : आप कुछ भी कहे। आप व्यस्त कहीं भी रहे, परन्तु आप सभी स्थलों पर पहुँचकर उचित मार्ग-प्रदर्शन करने से नहीं चूकतीं।

अचला : मुझे तो आश्चर्य होता है बहन कोकिला के कार्य को देखकर। पता नहीं, वे कब विश्राम करती है और कब भोजन ग्रहण करती हैं। मैं तो उन्हे एक सप्ताह से निरन्तर कार्य में व्यस्त देख रही हूँ।

नीलम : आश्चर्य की बात तो यह है कि इतने श्रम के बाद भी क्लान्ति का चिह्न भी दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। वही अपूर्व उमग और उत्साह, वही मधुर हास्य !

कोकिला : चलो नीलम ! अभी मुझे प्रियंवदा और ललितांगी का शृंगार करना है। बारात पहुँच रही है।

(कोकिला और नीलम का प्रस्थान)

कादंबिनी : बहन कोकिला के हृदय में आनन्द का सागर हिलोरें मार रहा है। कभी यहाँ दौडती हैं, कभी वहाँ।

अचला : लगता है, उनके जीवन की एक ही साध थी प्रधानवर का विवाह और आज वह पूर्ण होने जा रही है।

कादंबिनी : वाद्य-ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। शीघ्र समाप्त करो।

अचला : केवल एक-दो कूँची मारना शेष है। यह लो, मैं भी अपने कार्य से मुक्त हो गयी !

कादंबिनी : बारात समीप ही आ चुकी है। (ऊँचे स्थान पर चढ़कर) वह देखो। प्रधानवर का घोड़ा आगे है और बलवीर सिंह का पीछे।

अचला : (ऊपर चढ़कर) प्रधानवर वर-वेश में कितने सुन्दर दिखाई दे रहे हैं। शीश पर बँधा नीले रंग का साफा कितना सुन्दर लग रहा है।

कादंबिनी : और उस पर लगी कलगी कितनी सुहावनी मालूम पड़ रही है !

अचला : कितनी लम्बी बारात है कादंबिनी ! वह देख, दूर तक शीश ही शीश दिखाई दे रहे हैं। लगता है, आसपास के सभी ग्रामों के व्यक्ति आये हैं।

कादंबिनी : वह देखो। वह घोड़ा कितना सुन्दर नृत्य कर रहा है।

अचला : (अधरों पर मधुर हास्य लिये) वह अपने पग कितने धीरे-धीरे रख रहा है। उसने तो हंसगामिनी नारियों को भी लज्जित कर दिया।

कादंबिनी : बारात प्रवेश कर रही है, अब हमें यहाँ उतर पड़ना चाहिए।

अचला : नहीं।

कादंबिनी : क्यों ?

अचला : यहाँ से विवाह की हर विधि स्पष्ट दिखाई पड़ेगी।

कादंबिनी : हाँ-हाँ, ठीक है।

[मधुसूदन और बलबीर सिंह वेदी के समीप ले जाकर बैठा दिये जाते हैं। सभी लोग यथास्थान बैठ जाते हैं।]

अचला : (इंगित करते हुए) वह देख, आगे प्रियंवदा और पीछे ललितांगी को लाया जा रहा है।

कादंबिनी : प्रियंवदा को सहारा तो बहन कोकिला स्वयं दे रही है।

(दोनों को वेदी के समीप बैठा दिया जाता है।)

अचला : ललितांगी को तो देख।

कादंबिनी : क्या देखूँ ?

अचला : अरे, चंचल मृगी को भी लज्जित करनेवाली चपला किस प्रकार सिकुड़ी-सिमटी बैठी है।

कादंबिनी : चपला भी घन मे स्थिर हो गयी !

अचला : सुन, विवाह-विधि आरम्भ हो गयी है।

(दोनों कुछ समय तक मौन रहती है। वेद-मन्त्रों से वातावरण गूँज उठता है। शब्द-ब्रह्म के प्रभाव से जन-समाज आध्यात्मिक लोक में विचरण करने लगता है और वर-वधू लीन हो जाते हैं शब्द-ब्रह्म की शाश्वत सत्ता में।)

कादंबिनी : इस समय का वातावरण कितना शान्त और पवित्र है।

अचला : वर और-वधू के वचनों का आदान-प्रदान सुना तुमने !

कादंबिनी : हाँ, सुना।

अचला : यदि वर और वधू दोनों इन सात-पाँच वचनों को अपने जीवन में उतार लें, तो मैं सोचती हूँ, उनका जीवन आनन्दागार हो जाय। पता नहीं, हमारे ऋषि-मुनियों ने कब इन सात-पाँच वचनों की परम्परा आरम्भ की थी ! अतीत काल से यह सुसंस्कृतिक प्रणाली चली आ रही है।

कादंबिनी : वह देखो, अब वचनों के बाद एक-दूसरे को वरमाला पहनाकर ग्रहण कर रहे हैं।

(नगर-श्रेष्ठ वेदी के समीप पहुँचते हैं।)

कादंबिनी : नगर-श्रेष्ठ वेदी के समीप क्यों आये हैं ?

अचला : अब विवाह-विधि समाप्त हो चुकी है। नगर-श्रेष्ठ वर-वधू को तिलक लगाकर आशीर्वाद देंगे।

नगर-रक्षक : आप लोग शान्त हो जाइये। अब माननीय नगर-श्रेष्ठ आशीर्वाद देंगे।

नगर श्रेष्ठ : आज सर्वोदयपुरी के रूप में मानव-इतिहास के नव-प्रभात की शुभ वेला में अलकापुरी के ये युगल-युग्म विश्व-चेतना से आलोड़ित हो अभिनव सौन्दर्य को हृदयंगम कर नवजीवन मे प्रवेश कर रहे है। नव-रश्मियाँ उनका अभिषेक करते हुए आनन्द-विभोर हो रही हैं। इन पुनीत हृदयों की मिलन-वेला में सृष्टि के

अणु-अणु से बधाई-संगीत ध्वनित हो रहा है। उसकी रागिनी हर प्राणी के हृदय में गूँज रही है। उनकी हर उच्छ्वास से इन युगल-युग्मों के सफल जीवन की कामना निकल रही है। मैं भी उस अनादि शक्ति से प्रार्थना करता हूँ कि इन युग्मों का भविष्य दिनकर के समान उज्ज्वल एवं यशस्वी हो!

माँ सर्वोदयपुरी आशा करती है कि उसके नव-प्रकाश को उसकी ये योग्य एवं वीर सन्तानें अपनी आत्मा की लौ से अधिक प्रकाशवान् बना विश्व के सघन अन्धकार को दूर कर विश्व जीवन में शान्ति और आनन्द की अभिवृद्धि करेंगी। सर्व-मंगलम्! वसुधैव कुटुम्बकम्।

(दोनों युग्म नगर-श्रेष्ठ के चरण-स्पर्श कर प्रस्थान करते हैं।)

पटाक्षेप

सर्वोदय तथा भूदान-साहित्य